महाकवि

श्रीदण्डिप्रणीतम्

विश्रुतचरितम्

दशकुमारचरितम्

अष्टमोच्छ्वास

रामनारायणलाल बेनीमाधव

VI-11

महाकविश्रीदण्डिप्रणीतम्

विश्रुतचरितम्

(दशकुमारचरितम्: अष्टमोच्छ्वासः)

[संस्कृत व्याख्या, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत टिप्पणी
तथा उपयोगी भूमिका सहित]

सम्पादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
२, कटरा रोड, इलाहाबाद-२

१९७६

द्वितीय संस्करण] [मूल्य

Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
BHARATIYA ... New Delhi-1.
राम नारायण लाल अरुण कुमार
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
२, कटरा रोड, इलाहाबाद-२
RAM NARAIN LAL ARUN KUMAR Revised Price Rs

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
712

मुद्रक
नव साहित्य प्रेस
विजय कुमार अग्रवाल
इलाहाबाद

इस पुस्तक में प्रयुक्त सांकेतिक शब्द

अव्य० स०	... ...	अव्ययीभावसमास
उप० स०	... ...	उपपदसमास
उपमि० स०	... ...	उपमितसमास
कर्म० स०	... ...	कर्मधारयतत्पुरुषसमास
च० त०	... ...	चतुर्थीतत्पुरुषसमास
तृ० त०	... ...	तृतीयातत्पुरुषसमास
द्व० स०	... ...	द्वन्द्वसमास
द्वि० त०	... ...	द्वितीयातत्पुरुषसमास
द्विगुस०	... ...	द्विगुसमास
न० त०	... ...	नञ्तत्पुरुषसमास
प० त०	... ...	पञ्चमीतत्पुरुषसमास
प्रा० स०	... ...	प्रादितत्पुरुषसमास
ब० स०	... ...	बहुव्रीहिसमास
मयू० स०	... ...	मयूरव्यंसकादित्वात् तत्पुरुष समास
ष० त०	... ...	षष्ठीतत्पुरुषसमास
स० त०	... ...	सप्तमीतत्पुरुष समास
√	... ...	यह धातुबोधक चिह्न है।

परिचायिका

दशकुमारचरित

दशकुमारचरित, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, दश कुमारों के चरित्रों से चित्रित एक गद्यकाव्य है। यह तीन भागों में विभक्त है—पूर्वपीठिका, चरित या मुख्य गद्यभाग तथा उत्तरपीठिका। इनमें से प्रथम भाग में पाँच उच्छ्वास हैं, द्वितीय में आठ और तृतीय में कोई विभाजन नहीं है, प्रत्युत तीन-चार पृष्ठों में ही यह समाप्त हो जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार चरितभाग ही दण्डी की रचना है। शेष दो भाग परवर्ती लेखकों की कृति है। इसका कारण यह बताया जाता है कि प्रथम और अन्तिम भाग में जो शैली अपनाई गई है वह मध्यम भाग में नहीं है और भषा में भी अन्तर है। जो कुछ हो, अब बहुमत से यह सिद्ध हो गया है कि इस पूरे ग्रन्थ के रचयिता दण्डी ही हैं।

इसकी पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में मालवा के राजा मानसार के द्वारा मगध के राजा राजहंस के पराजय तथा वनवास करते हुए मगधराज के दश कुमारों के लाभ होने का वर्णन है। द्वितीय उच्छ्वास में वामदेव मुनि की आज्ञा से सभी कुमार दिग्विजय के लिए एक साथ प्रस्थान करते हैं, किन्तु कुछ कारणवश वे लोग आपस में बिछुड़ कर देश-देशान्तर का भ्रमण करने लग जाते हैं। कुछ वर्षों के बाद क्रमशः कुमारों का पुर्नमिलन होने पर तृतीय उच्छ्वास में सोमदत्त नामक कुमार अपना वृत्तान्त सुनाता है। चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पोद्भव नामक कुमार का चरित्र वर्णित है। पंचम उच्छ्वास में राजकुमार राजवाहन के चरित्र-वर्णन का प्रारंभिक अंश है और यहीं पूर्वपीठिका समाप्त हो जाती है। फिर चरितभाग के प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन के शेष चरित्र का वर्णन पूरा होता है। द्वितीय उच्छ्वास से लेकर सप्तम उच्छ्वास तक में क्रमशः अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त और मन्त्रगुप्त इन छह कुमारों ने अपना-अपना वृत्तान्त सुनाया है। अष्टम

उच्छ्वास में विश्रुत नामक कुमार के चरित्र का प्रारम्भिक अंश वर्णित है। यहाँ चरित-भाग समाप्त हो जाता है। इसके बाद उत्तरपीठिका में उसी विश्रुत के चरित्र का शेषांश वर्णित होता है और ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

दशकुमारचरित में तत्कालीन समाज का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। तपस्वी, ब्राह्मण, भिक्षु, भिक्षुणी, कुट्टनी, राजा, रानी, राकुमार, राजकुमारी, वेश्या, विट, चोर, जार, छली, ढोंगी तथा जादूगर आदि का बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया है। इसके सभी पात्र वास्तविकता तथा स्वाभाविकता से ओत-प्रोत हैं। कथाओं में परस्पर सामंजस्य और क्रमबद्धता है। वर्णन की दीर्घता न तो कथानक के प्रवाह को रोकती है और न अवान्तर कथाएँ मुख्य कथा में किसी प्रकार का गत्यवरोध उपस्थित करती हैं। हाँ, इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण और मुहावरेदार होती हुई भी यत्र-तत्र व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों से रहित नहीं है, विशेष रूप से पूर्वपीठिका वाले भाग में। इस गद्यकाव्य में गुण माधुर्य है, रीति पाञ्चाली है, रस शृंगार है, नायक दश कुमार हैं, किन्तु प्रधान नायक राजवाहन है और प्रधान नायिका अवन्तिसुन्दरी है।

दण्डी का जीवन-वृत्त

'दशकुमारचरित' के प्रणेता महाकवि दण्डी का जीवन-वृत्त अभी तक पूर्णतया निश्चित नहीं हो सका है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के आधार पर दण्डी का थोड़ा चरित प्राप्त होता है। दामोदर नामक विद्वान् के, जो या तो 'किरातार्जुनीय' के लेखक भारवि ही थे या उनके कोई अनन्य मित्र, तीन पुत्र हुए। जिनमें मनोरथ मध्यम पुत्र थे। मनोरथ के चार पुत्र हुए। जिनमें वीरदत्त सबसे छोटे थे। वे बड़े ही सुयोग्य दार्शनिक थे। उनकी पत्नी गौरी से कविवर दण्डी का जन्म हुआ। बचपन में ही दण्डी के माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। एक बार जब चालुक्य राजा ने दण्डी की जन्मभूमि कांची (आधुनिक कांजीवरम्) पर आक्रमण कर दिया तब ये काञ्ची छोड़ कर जंगलों में इधर-उधर भटकते रहे। अनन्तर जब राजा नरसिंहवर्मा प्रथम ने कांची को जीत

लिया तब दण्डी पुनः लौट आए और कांची में स्थिर रूप से रहने लग। यहीं उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की।

दण्डी के बारे में कई प्रकार की किवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। कविचरित में लिखा है कि एक अवसर पर गेंद खेलती हुई सुन्दरी ललना के रूप में सरस्वती देवी दण्डी के सामने प्रकट हुईं। उन्हें देखकर कवि ने यह श्लोक पढ़ा—

एकोऽपि त्रय इव भाति कन्दुकोऽयं
कान्तायाः करतलरागरक्तरक्तः ।
भूमौ तच्चरणनखांशुगौरः
खस्थः सन्नयनमरीचिनीलनीलः ।।

[यह गेंद एक होते हुए भी तीन प्रकार का मालूम होता है। जब यह रमणी के हाथ में रहता है तब उसके करतल की लालिमा से लाल दीखता है, भूमि पर उसके नखों की किरणों से धवल प्रतीत होता है और आकाश में उसकी आँखों की नीलिमा से नीला हो जाता है।]

इस प्रकार का वर्णन भवभूति ने भी किया है—

विदितं ननु कन्दुक ते हृदयं दयिताधरसंगमलुब्ध इव ।
वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ।।

[रे गेंद! तेरा मतलब तो समझ में आ गया कि तू ललना के अधर-चुम्बन का इच्छुक है। इसीलिए तो तू बार-बार उसके कर-कमल से आहत होकर गिर जाने पर भी उछल जाता है।]

यह दृश्य कविकुलललाम कालिदास की दृष्टि से भी ओझल नहीं हो सका है—

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादभिहन्यते मुहुः ।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियाः प्रसादाय पपात पादयोः ।।

[चूंकि इस गेंद ने वनिता के पयोधर का आधार धारण कर लिया है, इसलिए बार-बार उसके हाथ से पीटा जा रहा है—यह समझ कर मानो उसके केशों में लगा हुआ कमल उसके नेत्रों की आकृति धारण करने के कारण भयभीत हो अपना अपराध क्षमा कराने के लिये इसके पैरों पर गिर पड़ा है।]

कवि दण्डी के सम्बन्ध में एक और विशेष प्रवाद प्रचलित है कि जब ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, उसी समय किसी राजा के यहाँ उसकी लड़कियों को पढ़ाने के लिए ये शिक्षक नियुक्त हुए। एक दिन लड़कियों को रसिकता का विषय पढ़ाते हुए उन्हें राजा ने सुन लिया। जिससे राजा के मन में इनके प्रति सन्देह हो गया। दण्डी भी राजा का भाव ताड़ गए। तब उन्होंने राजा से दारिद्रयाष्टक (दरिद्रता के वर्णन में आठ श्लोक) बनाने के लिये अनुरोध किया। राजा ने दारिद्रयाष्टक की रचना करके दण्डी को सुना दिया। दण्डी हँसने लगे। उनके मनोगत भाव को समझ कर राजा ने निश्चय किया कि जैसे बिना दरिद्रता का अनुभव किये मुझमें दरिद्रता का वर्णन करने की क्षमता है उसी प्रकार बिना विषय का रसास्वाद लिये इनमें कृत्रिम रसिकता की संभावना है न कि वासनामयी दुष्ट रसिकता की। उस दिन से राजा कवि का विशेष सम्मान करने लगा।

दण्डी का समय

दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के प्रथमोच्छ्वास के अन्तिम वाक्य में चाणक्य के नीतिशात्र का उल्लेख है। इससे कुछ लोग छठी शताब्दी में दण्डी का उद्भव मानते हैं। यदि हम दण्डी के स्थिति-काल की पूर्व-सीमा और उत्तर-सीमा पर ध्यान दें तो भी छठी शताब्दी को उनका जन्म-काल मान लेना कोई अनुचित नहीं कहा जाएगा। क्योंकि दण्डी की अन्यतम कृति काव्यादर्श में सेतुबध नामक एक प्राकृत काव्य का उल्लेख है। उक्त काव्य का रचयिता राजा प्रवरसेन है। जिसका समय पाँचवीं शताब्दी माना आता है। इससे हम कह सकते हैं कि काव्यादर्श के प्रणेता दण्डी के स्थिति-काल की पूर्व सीमा पाँचवी शताब्दी से पूर्व नहीं आ सकती। दूसरी ओर, सिंहली भाषा के अलंकार-ग्रन्थ 'सय-बस-लकर' (स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। महावंश के अनुसार इसका रचयिता राजा सेन प्रथम सन् ८४६ से ८६६ई० तक राज्य करता था। इसी तरह काव्यादर्श की छाया लेकर कन्नड़ी भाषा के अलंकार-ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' की रचना हुई है। इसका रचना-काल सन् ८१४ ई० के आस-पास माना जाता है। अतएव दण्डी के स्थिति-काल की उत्तर सीमा ८०० ई० को नहीं लाँघ सकती है।

यद्यपि काव्यादर्श के एक पद्य में, जो इस प्रकार है—**'अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः ॥'** कादम्बरी (शुकनासोपदेश) के **'केवलं च निर्सगत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्'** इस वाक्य की छाया दीख पड़ती है और इससे कुछ लोग दण्डी को क़ादम्बरीकार बाणभट्ट (७वीं शती का पूर्वार्ध) के परवर्ती मानते हैं, किन्तु दण्डी की सरल एवं प्रसाद-गुण सम्पन्न शैली बाण की क्लिष्ट एवम् ओजपूर्ण शैली से नितान्त भिन्न है। यदि वे बाण के परवर्ती होते तो उनकी शैली पर बाण की बहुविश्रुत शैली का प्रभाव अवश्य पड़ा होता। इसके अतिरिक्त दशकुमारचरित में वर्णित भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति बाण के हर्षचरित में वर्णित महाराज हर्षवर्धन कालीन स्थिति से पूर्व की ही प्रतीत होती है। ऐसी दशा में संभव है कि या तो काव्यादर्श के उक्त पद्य का भाव बाण ने अपनी रचना में समाविष्ट कर लिया है या इस तरह के किसी पुरातन भाव का अनुकरण दोनों ने अपने-अपने ढङ्ग से किया है। अतः पूर्वोक्त छठी शताब्दी दण्डी का स्थिति-काल मानना समीचीन है।

दण्डी की रचनाएँ

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

उक्त श्लोक के अनुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें 'काव्यादर्श' और 'दशकुमारचरित' तो निःसन्देह उनकी रचनाएँ हैं। तीसरी कृति के बारे में अभी तक विद्वानों में ऐकमत्य नहीं हो सका है। कुछ समय पूर्व यह विचार उठाया गया था कि 'छन्दोविचिति' दण्डी की तीसरी रचना है। किन्तु विद्या रूप से निर्दिष्ट होने के कारण यह ग्रन्थ सिद्ध नहीं होता (सा विद्या नौस्तितीर्षूणां गम्भीरं काव्यसागरम्—काव्यादर्श १, १२)। भोज (१००० ई०) ने अपने 'शृंगारप्रकाश' में उल्लेख किया है कि दण्डी का एक 'द्विसन्धानपद्धतिका' नामक काव्य है। किन्तु वह उपलब्ध नहीं है। इधर 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के प्रकाश में आ जाने से बहुत से विद्वान् इसी को दण्डी की तीसरी रचना मानने लगे हैं।

'अवन्तिसुन्दरीकथा' बाण के हर्षचरित के अनुसार ही कतिपय श्लोकों से प्रारम्भ होती है। उसमें बहुत से कवियों के नाम दिये गए हैं। वाल्मीकि, व्यास, सुबन्धु, गुणाढ्य, शूद्रक, भास, प्रवरसेन, कालिदास, नारायण, मयूर और बाण का भी नामोल्लेख स्पष्ट रूप से हुआ है। (ध्यान रहे कि यदि अवन्तिसुन्दरी-कथा यथार्थतः दण्डी की लिखी हुई है तब तो दण्डी को बाण के अनन्तर ही मानना चाहिए। वैसी स्थिति में दण्डी का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानना उचित होगा, क्योंकि ७वीं शती का पूर्वार्ध बाण का समय माना जाता है।) कुछ श्लोकों में बीच का भाग अप्राप्त है, अतः उन श्लोकों में जिन कवियों का उल्लेख रहा होगा, उनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। इन श्लोकों के बाद गद्य में कथा का प्रारम्भ होता है। इसमें कांची नगरी का वर्णन तथा दण्डी की आत्मकथा लिखी हुई है। इसके पश्चात् अवन्तिसुन्दरी की कथा चलती है। भाव की दृष्टि से यह दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के समान है। इसका सप्तम उच्छ्वास तो बहुत ही विशिष्ट है। सम्पूर्ण उच्छ्वास में एक भी ओष्ठ्य वर्ण नहीं है। इसकी शैली कादम्बरी की शैली से मिलती-जुलती है।

दण्डी का काव्यादर्श अलंकारशास्त्र का एक अनुपम ग्रन्थ है। इसकी लोकप्रियता या प्रसिद्धि का प्रमाण इसी से मिलता है कि इसका अनुवाद सिंहली भाषा तथा तिब्बती भाषा तक में हो चुका है। इसमें ४ परिच्छेद हैं तथा श्लोकों की संख्या ६६० है। इसके प्रथम परिच्छेद में काव्य के लक्षण एवं विस्तृत भेद, वैदर्भी तथा गौड़ी रीति और दश गुणों का वर्णन विस्तार से किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में ३५ अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गए हैं। तीसरे परिच्छेद में शब्दालंकारों का विशेषतः यमक अलंकार का व्यापक वर्णन हुआ है। चौथे परिच्छेद में दश प्रकार के दोषों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं।

दण्डी की शैली

कल्पनाशील दण्डी की काव्य-शैली पाञ्चाली रीति का अनुसरण करती है। क्योंकि इनकी रचना में शब्द-गुम्फन अर्थ के अनुरूप है। अतएव 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते' यह लक्षण सर्वथा घटित होता है। अर्थ की

स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और शब्द का लालित्य ये दण्डी की शैली के विशेष गुण हैं। अतएव प्राचीन समीक्षकों ने इनके बारे में लिखा है। 'दण्डिनः पदलालित्यम्'। इनका गद्य बड़ा ही चुस्त, व्यवहरणीय तथा रसमय है। अतएव इनकी रचना में माधुर्य गुण विशेष रूप से पाया जाता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन्होंने ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' की तरफ ध्यान ही न दिया हो। इन्होंने लम्बे तथा छोटे सभी तरह के समस्त वाक्यों का भरपूर प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक-आध प्रसंग देखिये—

'तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डमण्डलः, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायणतरुणगणिकागणगीयमानया, अतिमानया, शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या, रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्या अभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरोरुरुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलावलयितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान् अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः……।'

(दशकुमारचरित-पूर्वपीठिका—प्रथमोच्छ्वास)

जो लोग दशकुमारचरित के मध्यमभाग को ही दण्डिप्रणीत मानते हैं, उनके लिए वहीं का उदाहरण दिया जा रहा है—

'….फणिमुखकाकलीसंदंशकपुरुषशीर्षकयोगचूर्णयोगवर्तिकामानसूत्रकर्कटकररज्जुदीपभाजनभ्रमरकरण्डकप्रभृत्यनेकोपकरणयुक्तः ।।……आतिरश्चीनबन्धुरशिशिरोद्देशदृश्यमाननिष्टप्ततपनीयसूत्रपर्यस्तपद्मरागरुचकम्, उपरिपरावृत्तश्रवणपाशरत्नकर्णिकाकिरणमञ्जरीपिञ्जरितविषमव्याविद्धाशिथिलशिखण्डबन्धनम्, आत्मप्रभापटलदुर्लक्ष्यपाटलोत्तराधरविवरम्, गण्डस्थलीसंक्रान्तहस्तपल्लवदर्शितकर्णावतंसकृत्यम्, उपरिकपोलादर्शतलनिषिक्तचित्रवितानपत्रजातिजनितविशेषकक्रियम्……।' (दशकुमार—चरितभाग—द्वितीय उच्छ्वास)

इस प्रकार यत्र-तत्र समस्त वाक्यों का प्रयोग करते हुए भी दण्डी ने अधिकतर छोटे-छोटे वाक्यों की रचना की है जो बहुत ही सरल, सरस एवं मनोरम

हैं। इनके वाक्यों में अलंकारों का प्रयोग बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ हुआ है। रस का परिपाक भी बहुत सुन्दर है। कथानकों में कौतुक तथा विस्मय-जनक घटनाओं के पुट होने के कारण अद्भुत रस का संचार बहुत हो गया है। कथानक नितान्त सजीव हैं, जिनके भीतर से तत्कालीन समाज का एक खासा चित्र हमारे मानसपटल पर अंकित हो जाता है। इनकी रचना को पढ़ने से ऐसा मालूम होता है कि ये कई विषयों के पारगामी विद्वान् थे। इन्होंने राज-नीति, कामशास्त्र, चौरशास्त्र, इन्द्रजाल आदि का वर्णन बड़ी निपुणता से किया है।

दण्डी वस्तुतः जनसाधारण के प्रतिनिध कवि हैं। क्योंकि उनके काव्य में जनता के दुःख-सुख, वेदना एवम् आनन्द की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। जनकवि होने के नाते ही वे जनमानस पर इतना छा गए कि कतिपय आलोचकों ने वाल्मीकि और व्यास के वाद उन्हीं को तीसरा कवि माना है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

इतना ही नहीं, कुछ लोगों ने तो दण्डी को ही एक मात्र कवि कहा है—

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः ।

विश्रुतचरित का कथासार

विश्रुत कहने लगा—'देव! मैं विन्ध्याटवी में भ्रमण कर रहा था। वहाँ लगभग एक आठ वर्ष के बालक को देखा। वह भूख-प्यास से व्याकुल था। उसने मुझसे सहायता माँगी। क्योंकि उसका रक्षक एक वृद्ध पुरुष उसी के लिए जल निकालते हुए वहीं एक कुएँ में गिर पड़ा था। मैंने लताओं की सहायता से उस वृद्ध को बाहर निकाला तथा पत्थर मारकर एक बड़हल के वृक्ष से पाँच-छह फल तोड़े। उनसे दोनों की भूख मिटायी। फिर वृद्ध से बालक का परिचय पूछा।

वृद्ध कहने लगा—'महाभाग! विदर्भ देश में पुण्यवर्मा नामक एक सर्वगुण-सम्पन्न राजा था। उसके मरने के उपरान्त उसका पुत्र अनन्तवर्मा राजगद्दी पर बैठा। वह कलाकुशल होता हुआ भी राजनीतिज्ञ नहीं था। रातदिन विलासिता में डूबा रहता था। इसलिए उसके मुख्य मन्त्री वसुरक्षित ने उसे

एक दिन एकान्त में राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत उपदेश दिया। उसने बात मान ली, किन्तु अपने अन्तःपुर में रानियों के समक्ष मंत्री के उपदेश की चर्चा कर दी। वहाँ विहारभद्र नामक उसके एक महास्वार्थी सेवक ने छिपे तौर से उसकी सब बातें सुन लीं। उसने आकर अनन्तवर्मा के सामने बड़ी नम्रता से राजनीति का खंडन करते हुए राजा को यथेच्छभोगपरायणता की सलाह दी। कामी राजा को उसकी बात खूब रुची। फिर क्या था, अनन्तवर्मा मंत्री की अवहेलना करके भोगासक्त हो गया।

अनन्तर अश्मकदेश के अधिपति वसन्तभानु ने अपने मंत्री के पुत्र चन्द्रपालित को बहुत-से गुप्तचरों तथा सुन्दरी स्त्रियों के साथ अनन्तवर्मा के पास भेजा। उसने ऐसा माया-जाल फैलाया कि अनन्तवर्मा बुरी तरह उसके चक्कर में फँसकर महादुर्व्यसनी हो गया। उसके देखा-देखी नौकर-चाकर, प्रमुख अधिकारी, सामन्त आदि सब के सब कुमार्ग पर चलने लगे। अवसर पाकर अश्मकपति ने उस पर आक्रमण कर दिया। अनन्तवर्मा मारा गया।

इस बीच वसुरक्षित कुछ पुराने सेवकों, अनन्तवर्मा के पुत्र इस बालक को और इसकी बड़ी बहन मंजुवादिनी को इनकी माता वसुन्धरा समेत लेकर भाग निकले। दाहज्वर से पीड़ित होने के कारण वसुरक्षित मार्ग में ही मर गये। तब सेवकों ने महारानी वसुन्धरा को पुत्र-पुत्री सहित अनन्तवर्मा के सौतेले भाई मित्रवर्मा के पास माहिष्मती नगरी में पहुँचा दिया। मित्रवर्मा दुष्ट था। वह महारानी के पुत्र को मारकर उनके साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। इसलिए महारानी ने मुझे इस बालक को लेकर किसी सुरक्षित जगह में भाग निकलने का आदेश दिया। मैं इसे लेकर भागता हुआ यहाँ आ पहुँचा। इसके लिए जल निकालने के समय कुएँ में गिर पड़ा। जिस पर आपने अनुग्रह किया। मेरा नाम नालीजंघ है। अब आप ही इस बालक के रक्षक हैं।

तदुपरान्त दैवात् वहाँ आये हुए एक बहेलिये के बाण से मैंने एक हरिण मारकर आग में पकाकर उन दोनों की तथा अपनी क्षुधा शान्त की। उसी बहेलिए से हमें ज्ञात हुआ कि माहिष्मती में मित्रवर्मा मंजुवादिनी का विवाह

प्रचण्डवर्मा से कराने की तैयारी कर रहा है। तब मैंने नालीजंघ से कहा—'तुम महारानी के पास जाकर एकान्त में मेरा समाचार बताकर कहना कि बालक को बाघ खा गया—ऐसी आप घोषणा करके रोना-पीटना शुरू कर दीजिए। इस पर मित्रवर्मा जब उन्हें सान्त्वना देने के लिए आवे तब वे यह कहें कि यदि मैं पतिव्रता हूँ तो यह माला तुम्हारे लिए तलवार का प्रहार हो जाय। यह कहकर वत्सनाभ नामक विष के साथ जल में डुबोयी हुई एक माला उसके ऊपर फेंक दे। वह इससे मर जाएगा। तब उस माला को इस ओषधि के साथ पुनः जल में डुबोकर वह अपनी पुत्री को पहना दें। पुत्री नहीं मरेगी। इस घटना से प्रजा उनको पतिव्रता मानकर उस पर बड़ी श्रद्धा करेगी। फिर प्रचण्डवर्मा को संदेश कहलावें कि वह आकर मंजुवादिनी के साथ पूरा राज्य ले ले। उस समय मैं और राजकुमार भास्करवर्मा कापालिक साधु के वेश में वहीं श्मशान में निवास करेंगे। पुनः महारानी प्रतिष्ठित लोगों से कहें कि विन्ध्यवासिनी देवी ने मुझसे स्वप्न में कहा है 'आज के चौथे दिन प्रचण्डवर्मा मर जाएगा। पाँचवें दिन नर्मदातटवर्ती मेरे मन्दिर में तुम्हारे पुत्र के साथ एक ब्राह्मणकुमार प्रकट होगा। वह इस राज्य का पालन करता हुआ तुम्हारे पुत्र को राजगद्दी पर बैठायेगा। उसके बाद तुम मञ्जुवादिनी का विवाह उसी ब्राह्मणकुमार के साथ कर देना'।

मैंने नालीजंघ से जो योजना बतायी, उसको पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया गया। मैं और राजकुमार कापालिकवेश में वहीं पहुँच गये। महारानी से भिक्षा लेकर नालीजंघ से पूछने पर मुझे पता चला कि प्रचण्डवर्मा इस समय राजसभागृह में विद्यमान है। मैं चारण के वेश में प्रचण्डवर्मा के पास पहुँचकर नाना प्रकार के खेलों से उसका मनोरंजन करने लगा। दिनान्त के समय खेल ही खेल में छुरी से उस पर प्रहार करके भाग निकला। आधी रात के समय महारानी का एक नौकर यथानिर्दिष्ट दुर्गादेवी के मन्दिर में कीमती वस्त्र एवं आभूषण रखकर चला गया मैं और राजकुमार उसी मन्दिर में प्रतिमा के पास एक बिल बनाकर बिल के मुँह पर पत्थर रखकर छिपे हुए थे। वस्त्र-आभूषण पहनकर हम दोनों उसी बिल में घुस गए। दूसरे दिन प्रातःकाल महारानी मंत्रियों तथा सामन्तों के साथ दुर्गा-मन्दिर में आयी। पूजन करके

किवाड़ सटाकर मन्दिर के प्रांगण में सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गए तथा संकेतानुसार नगाड़ा बजाया जाने लगा। नगाड़े का शब्द सुनकर हम दोनों बिल से बाहर निकलकर लोगों के सामने आये। मैंने सबको सम्बोधित किया —'विन्ध्यवासिनी देवी मेरे द्वारा आप लोगों को आदेश देती हैं कि मैंने व्याघ्री का रूप धारण कर कुमार की रक्षा की। आज से इसे मेरा पुत्र समझो। यह राजसिंहासन पर बैठाया जाय। इसकी रक्षा के लिए इस ब्राह्मणकुमार को नियुक्त किया है। इस ब्राह्मणकुमार के साथ मंजुवादिनी का विवाह कर दिया जाय।'

यह सुनकर सभी लोग विस्मित एवं प्रमुदित हुए। उसी दिन राजकुमार को राजसिंहासन पर बैठाया गया। मंजुवादिनी का विवाह मेरे साथ हुआ। मैं राज्य-पालन करता हुआ राजकुमार को राजनीति की शिक्षा देने लगा।

अनन्तर गुप्तचरों द्वारा वसन्तभानु की प्रजाओं में 'बुद्धिभेद उत्पन्न करके उसको विनष्ट कर विदर्भदेश का पैतृक राज्य भी राजकुमार को प्राप्त करा दिया। कुछ दिनों के बाद अपनी पत्नी मंजुवादिनी को माता के पास छोड़कर आपको ढूंढ़ता हुआ यहाँ आने पर आपके दर्शन से कृतकृत्य हुआ।'

विश्रुतचरितस्य कथासारः संस्कृते

विश्रुतः कथयति—'एकदा विन्ध्यारण्ये परिभ्रमता मया कोऽपि क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः कुमारः दृष्टः। तस्य सहायकः एकः वृद्धः तदानीं कूपे पतितः आसीत्। कुमारप्रार्थनया अहं तं वृद्धं कूपान्निष्कास्य उभयोः परिचयं पृष्टवान्। वृद्धः अगदत्—'विदर्भजनपदस्य राजा पुण्यवर्मा नामाऽऽसीत्। दिवंगते तस्मिन् तस्य पुत्रः अनन्तवर्मा राज्यासनम् अध्यतिष्ठत्। स राजनीतिनिपुणो नासीत्, मन्त्रिणां परामर्शमपि नामन्यत। अतएव स्वस्य विहारभद्रनामकसेवकस्य प्रेरणया सकलेषु दुर्व्यसनेषु आपादचूडं निमग्नो जातः।

एवं गते राजनि मन्त्रिषु च उदासीनेषु जातेषु अनन्तवर्मणः शत्रुः अश्मकेन्द्रः कूटनीतिं प्रायुङ्क्त। स विदर्भेषु स्वगुप्तचरान् प्रेष्य नानाकूटोपायैः अनन्तवर्मणः सैन्यानि व्यनाशयत्, प्रजासु बहून् उपद्रवान् अकारयत्, युद्धे अनन्तवर्माणमपि अमारयत्।

तदनन्तरम् अनन्तवर्मणो मन्त्रिवृद्धो वसुरक्षितः कतिपयैः विश्वस्तसेवकैःसह तस्य कुमारमेनं भास्करवर्माणमस्यैव ज्यायसीं भगिनीं मञ्जुवादिनीमनयोश्च मातरं वसुंधरामादाय अपासर्पत्। परं दौर्भाग्यात् वसुरक्षितः मार्गे एवं निधनम् आप्तवान्। ततो नालीजंघनामाहं कुमारसेवकः सापत्यां देवीं वसुन्धरां भर्तुः द्वैमातुरस्य भ्रातुः मित्रवर्मणः निकटं नीतवान्। दुष्टप्रकृतिको मित्रवर्मा बालमेनमजिघांसीत्। इदं तु ज्ञात्वा देव्याज्ञया अहं माहिष्मत्याः एनं निर्गमय्य विन्ध्याटवीं व्यगाहिषि। अत्रैव दारुणपिपासापीडितस्य अस्य कुमारस्य वारि दातुकामोऽहं कूपे पतितः त्वयैवमनुगृहीतः'।

पुनः मया भास्करवर्मणो मातुः सम्बन्धे पृष्टो नालीजंघः अकथयत्— 'पाटलिपुत्रस्य वणिजो वैश्रवणस्य दुहितरि सागरदत्तायां कोसलेन्द्रात् कुसुमधन्वनोऽस्य माता जाता'। यद्येवमेतन्मातुर्मत्पितुश्चैको मातामहः इत्युक्त्वा अहं तं सस्नेहम् आलिंगितवान्। तदानीमेव केनापि व्याधेनानुसृतौ दैवात्समुपागतौ द्वौ मृगौ तत्र हत्वा दावाग्निषु मृगमांसं शूलाकृत्य तप्तेनामिषेण तयोरात्मनश्च क्षुधमतार्षम्।

तस्मात् व्याधात् वयं ज्ञातवन्तो यत् प्रचण्डवर्मा नाम चण्डवर्मानुजो मञ्जुवादिनीं परिणेतुं माहिष्मतीमभ्येति। एतदाकर्ण्य अहं नालीजंघं कथितवान्— 'अहं कूटनीत्या भास्करवर्माणं राज्ये प्रतिष्ठापयेयम्। त्वं प्रतिगत्य कुशलमस्य बालस्य मद्वार्तां च देव्यै रहसि निवेद्य पुनः कुमारः शार्दूलभक्षित इति प्रकाशमाक्रोशः कार्यः। मित्रवर्मा देवीमाश्वासयितुं नूनं तदुपान्तमागमिष्यति। तदा देव्या स वाच्यः—'अथ तु मम बालकोऽपि परलोकमगात्। अतएव अद्यप्रभृति त्वदादेशकारिण्येवाहम्'। पुनरनेन वत्सनाभनाम्ना महाविषेण संनीय जलं तत्र मालां मज्जयित्वा तया स वक्षसि मुखे च हन्तव्यः 'स एवायमसिप्रहारः पापीयसस्तवास्तु यद्यस्मि पतिव्रता' इत्युक्त्वा। पुनरनेनौषधेन संगमिते तोये तां मालां मज्जयित्वा स्वदुहित्रे देया। मृते तु तस्मिन् तस्यां च निर्विकारायां सत्यां प्रजाः देवीं साक्षात् देवीमेव मत्वा अनुवर्तिष्यन्ते। पुनः प्रचण्डवर्मणे संदेश्यम्—'अनायकमिदं राज्यम्। अनेनैव सह बालिकेयं स्वीकार्या'। तावदावां कापालिकवेषच्छन्नौ पुराद्बहिरुपश्मशानं वत्स्यावः। पुनः पौरवृद्धान् आप्तांश्च मन्त्रिवृद्धानेकान्ते ब्रवीतु देवी—'स्वप्नेऽद्य मे देव्या विन्ध्यवासिन्या कृतः प्रसादः।

अद्य चतुर्थेऽहनि प्रचण्डवर्मा मरिष्यति। पञ्चमेऽहनि रेवातटवर्तिनि मञ्जुवने त्वत्सुतेन सह कोऽपि द्विजकुमारो निर्यास्यति। स राज्यमिदमनुपाल्य बालं ते प्रतिष्ठापयिष्यति। स खलु बालो मया व्याघ्रीरूपया सुगूढं स्थापितः। सा चेयं वत्सा मञ्जुवादिनी तस्य द्विजकुमारस्य पत्नीत्वेनैव कल्पिता' इति। तदेतदति-रहस्यं युष्मास्वेव गुप्तं तिष्ठतु, यावदेतदुपपत्स्यते' इति।

नालीजंघः प्रहृष्टः प्रायात्। मन्निर्देशश्च यथाचिन्तितमनुष्ठितोऽभूत्। अहं च कापालिकवेषे देव्याः भिक्षां लब्ध्वा नालीजंघात् प्रचण्डवर्मणोऽवस्थानं ज्ञात्वा ऐन्द्रजालिकवेषं गृहीत्वा प्रचण्डवर्मणः समीपं गतः। तत्र नानाश्चर्यकरेण ऐन्द्र-जालिककर्मणा सर्वान् संमोह्य अन्ते एकया क्षुरिकया प्रचण्डवर्मणः प्रत्युरसं प्रहृत्य वेगात् पलायितः। ततो दुर्गागृहं प्राप्य प्रतिमुक्तपूर्ववेषः सह कुमारेण तत्रैव प्रागेव मया कृतं प्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारं बिलम् प्राविशम्।

अथ मध्यरात्रे गुप्तरूपेण देव्या प्रेषितानि महार्हवस्त्राभूषणानि आवाभ्यां धारितानि। प्रभाते देवी मन्त्रिभिः पौरजनैश्च सह दुर्गामन्दिरम् आगच्छत्। भवगतीमर्चयित्वा सर्वे जनाः कपाटं पिधाय मन्दिरप्रांगणे अतिष्ठन्। तदा आवां विलान्निर्गत्य उद्घाटितकपाटौ जनानां दृष्टिगोचरौ जातौ। अहं प्रजाः अभ्य-धाम्—'विन्ध्यवासिनी देवी मन्मुखेन युष्मानाज्ञापयति—'इमं राजकुमारं व्याघ्री-रूपेण अहमेव रक्षितवती। अतोऽयं मत्पुत्रः शासकत्वेन युष्माभिः गृह्यताम्। अयं द्विजकुमारश्च रक्षकत्वेनास्य तिष्ठतु। अस्य स्वसा मंजुवादिनी द्विजबालस्य पत्नी भवतु' इति।

श्रुत्वैतत् सर्वाः प्रकृतयः प्राहृष्यन्। भास्करवर्मा राज्येऽधिष्ठितः। मञ्जु-वादिन्या सह मम विवाहः संवृत्तः। अहं पुरोहितेन भास्करवर्माणं भद्राकृतमुपनाय्य राजनीतिं पाठयन् राजकार्याणि अन्वतिष्ठम्।

———

॥ ओम् ॥

दशकुमारचरितम्

अष्टमोच्छ्वासः

विश्रुतचरितम्

अथ सोऽप्याचचक्षे—'देव, मयापि परिभ्रमता विन्ध्याटव्यां कोऽपि कुमारः क्षुधा तृषा च क्लिश्यन्नक्लेशार्हः क्वचित्कूपाभ्याशेऽष्टवर्षदेशीयो दृष्टः। स च त्रासगद्गदमगदत्—'महाभाग, क्लिष्टस्य मे क्रियतामार्य, साहाय्यकम्। अस्य मे प्राणापहारिणीं पिपासां प्रतिकर्तुमुदकमुदञ्चन्निह कूपे कोऽपि निष्कलो ममैकशरणभूतः पतितः। तमलमस्मि नाहमुद्धर्तुम्' इति।

संस्कृत व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, सः—विश्रुतनामा कुमारः, अपि, आचचक्षे—कथयामास, देव—महाराज, विन्ध्याटव्यां—विन्ध्यारण्ये, परिभ्रमता—भ्रमणं कुर्वता, मयापि, क्वचित्—कुत्रचित्, कूपाभ्याशे—कूपसमीपे, क्षुधा—बुभुक्षया, तृषा—पिपासया, च, क्लिश्यन्—क्लेशमनुभवन्, अक्लेशार्हः—क्लेशसहनयोग्यो नेत्यर्थः, अष्टवर्षदेशीयः—असमाप्ताष्टवर्षः, कोऽपि—अज्ञातकुलनामा, कुमारः—बालकः, दृष्टः—अवलोकितः। सः—कुमारः, त्रासगद्गदं—भयविक्लवं यथा स्यात् तथा, अगदत्—अब्रवीत्—'महाभाग—महोदय, आर्य—पूज्य, क्लिष्टस्य—क्लेशयुक्तस्य, मे—मम, साहाय्यकं—, सहायता, क्रियताम्। अस्य, मे, प्राणापहारिणीं—जीवितनाशिनीं, पिपासां, प्रतिकर्तुम्—अपनोदयितुम्, उदकं—जलम्, उदञ्चन्—उत्क्षिपन्, निष्कलः—स्थविरः, ममैकशरणभूतः—मदवलम्बनभूतः, कोऽपि, (जनः) इह—अस्मिन् कूपे, पतितः—अपतत्। तम्—कूपपतितं वृद्धम्, उद्धर्तुम्—कूपान्निष्कासयितुम्, अहम्, अलं—समर्थः, नास्मि' इति।

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर वह भी कहने लगा—महाराज! विन्ध्याचल के जंगल में घूमते हुए मैंने भी कष्ट पाने के अयोग्य एवं भूख-प्यास से पीड़ित होते हुए एक लगभग आठ वर्ष के बालक को कहीं कुएँ के पास देखा।

उसने भय के मारे गला-रुँधे हुए स्वर में कहा—'महोदय, पूज्य, कष्ट में पड़े हुए मेरी सहायता करें। प्राण हरण करने वाली मेरी प्यास को दूर करने के लिए जल निकालता हुआ कोई वृद्ध पुरुष, जो मेरा एकमात्र रक्षक था, इसी कुएँ में गिर पड़ा है। उसे निकालने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ।

टिप्पणी—अथ—(सप्तम उच्छ्वास में मन्त्रगुप्त के कथन के) पश्चात्। अथ अव्यय के इतने अर्थ ोते हैं—'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्र्न्येष्वथोऽथ' इत्यमरः। **परिभ्रमता**—घूमते हुए। परि√भ्रम्+शतृ=परिभ्रमन्, तेन। **विन्ध्याटव्याम्**—विन्ध्य-वन में। अटवी=वन। विन्ध्यस्य अटवी (षष्ठीतत्०) तस्याम्। **क्षुधा**—भूख से। क्षुध् शब्द का तृतीया-एकवचन। **तृषा**—प्यास से। तृष् शब्द का तृ० ए०। **क्लिश्यन्**—कष्ट पाता हुआ। √क्लिश्+शतृ, श्यन्। **अक्लेशार्हः**—क्लेश पाने या कष्ट सहन करने के अयोग्य। अर्हतीति अर्हः√अर्ह्+अच् पचादित्वात्, क्लेशस्य अर्हः (षष्ठीतत्०), न क्लेशार्हः (नञ्तत्०)। **कूपाभ्याशे**—कुएँ के समीप। **अष्टवर्षदेशीयः**—जिसकी अवस्था आठ वर्ष से कुछ कम की हो। अष्टौ वर्षाणि इति अष्टवर्षाणि (कर्म० स०), अष्टवर्षेभ्यः ईषदूनः इति अष्टवर्ष+देशीयर्=अष्टवर्षदेशीयः। **त्रासगद्गदम्**—भय के कारण अस्पष्ट अर्थात् रुँधे हुए गले से। त्रासेन गद्गदम् (तृतीयातत्०)। यह 'अगदत्' क्रिया का विशेषण है। **क्लिष्टस्य**—क्लेशयुक्त, कष्ट में पड़े हुए। √क्लिश्+क्त। **साहाय्यकम्**—सहायता। सहायस्य भावः साहाय्यम् सहाय+ष्यञ्, साहाय्यम् एव साहाय्यकम् साहाय्य+कन् स्वार्थे। **प्राणापहारिणीम्**—प्राण लेने वाली। प्राणान् अपहर्तुं शीलमस्याः इति प्राण-अप√हृ+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये (उपपद स०)+ङीप्। **पिपासाम्**—प्यास को। पातुमिच्छा पिपासा√पा+सन्+टाप्। **प्रतिकर्तुम्**—प्रतीकार या दूर करने के लिए। प्रति√कृ+तुमुन्। **उदञ्चन्**—निकालता हुआ। उद्√अञ्च्+शतृ। **निष्कलः**—वृद्ध। **ममैकशरणभूतः**—मेरा एकमात्र रक्षक या सहारा। एकम् एव शरणम् इति एकशरणम् (कर्मधारय), एकशरणं भूतः (सुप्सुपा स०)। **अलम्**—समर्थ। **उद्धर्तुम्**—निकालने के लिए। उद्√हृ+तुमुन्।

अथाहमभ्येत्य व्रतत्या कयापि वृद्धमुत्तार्य तं च बालं वंशनालीमुखोद्धृताभिरद्भिः फलैश्च पञ्चषैः शरक्षेपोच्छ्रितस्य लकुचवृक्षस्य शिखरात्पाषाण-

पातितैः प्रत्यानीतप्राणवृत्तिमापाद्य, तरुतलनिषण्णस्त जरन्तमब्रवम्––तात, क एष बालः, को वा भवान्, कथं चेयमापदापन्ना' इति ।

सोऽश्रुगद्गदमगदत्––'श्रूयतां महाभाग! विदर्भो नाम जनपदः । तस्मिन् भोजवंशभूषणम्, अंशावतार इव धर्मस्य, अतिसत्त्वः, सत्यवादी, वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रञ्जितभृत्यः, कीर्तिमान्, उदग्रः, बुद्धिमूर्तिभ्यामुत्थानशीलः, शास्त्रप्रमाणकः, शक्यभव्यकल्पारम्भी, संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्, उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, असम्बद्धप्रलापेष्वदत्तकर्णः, कदाचिदप्यवितृष्णो गुणेषु, अतिनदीष्णः कलासु, नेदिष्ठो धर्मार्थसंहितासु, स्वल्पेऽपि सुकृते सुतरां प्रत्युपकर्ता, प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयोः, यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणाम्, उत्साहयिता कृतकर्मणामनुरूपैर्दानमानैः, सद्यः प्रतिकर्ता दैवमानुषीणामापदाम्, षाड्गुण्योपयोगनिपुणः, मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य, पुण्यश्लोकः, पुण्यवर्मा नामासीत् ।

संस्कृत व्याख्या––अथाहम्, अभ्येत्य––समीपमागत्य, कयापि, व्रतत्या––लतया, वृद्धम्, उत्तार्य––निष्कास्य, तं, च, बालं––कुमारम्, वंशनालीमुखोद्धताभिः––वंशस्य वेणोः नाली अन्तश्छिद्रं तस्या मुखम् अग्रभागः तेन उद्धृताभिः, निष्कासिताभिः, अद्भिः––जलैः, शरक्षेपोच्छ्रितस्य––शरक्षेपो बाणगमनं ततोऽपि उच्छ्रितस्य उन्नतस्य, लकुचवृक्षस्य, शिखरात्––अग्रदेशात् पाषाणपातितैः––प्रस्तरनिःक्षेपेणाधःक्षिप्तैः, पञ्चषैः––पञ्चषट्संख्याकैः, फलैः, प्रत्यानीतप्राणवृत्तिम्––प्रत्यानीता पुनराक्षिप्ता प्राणवृत्तिः जीवनयोगो यस्य तादृशम्, आपाद्य––कृत्वा, तरुतलनिषण्णः––वृक्षस्य अधस्तात् उपविष्टः, (अहम्) तं, जरन्तं––वृद्धम्, अब्रवम्––अकथयम्––'तात ········ 'आपद्––विपत्तिः, आपन्ना––प्राप्ता ।

सः––वृद्धः ········'जनपदः––देश (अस्ति) । तस्मिन्––विदर्भे, भोजवंशभूषणम्––भोजकुलालङ्कारः, धर्मस्य अंशावतार इव––अंशेन एकदेशेन अवतार इव, अतिसत्त्वः––महाबलः, सत्यवादी––सत्यवक्ता वदान्यः––दानशौण्डः, विनीतः––नम्रः, प्रजानां––जनानां, विनेता––शिक्षयिता, रञ्जितभृत्यः––अनुरक्तसेवकः, कीर्तिमान्––यशस्वी, उदग्रः––उन्नतः, बुद्धिमूर्तिभ्यां––प्रज्ञातनुभ्याम्, उत्थानशीलः––अभ्युदयसम्पन्नः, शास्त्रप्रमाणकः––शास्त्रमेव प्रमाणं

यस्य तथाभूतः, शक्यभव्यकल्पारम्भी—शक्यं स्वसाध्यं भव्य मङ्गलजनकं कल्पं विधिम् आरभते इति शक्यभव्यकल्पारम्भी, बुधान्—पण्डितान्, सम्भावयिता—सत्कर्ता, सेवकान्—अनुचरान्, प्रभावयिता—प्रभुत्वकारकः, बन्धून्—स्वजनान्, उद्भावयिता—संवर्धकः, शत्रून्—रिपून्, न्यग्भावयिता—अभिभावियता जेतेति यावत्, असम्बद्धप्रलापेषु—निरर्थकवचनेषु, अदत्तकर्णः—अश्रोता, कदाचिदपि, गुणेषु, अवितृष्णः—विरागरहितः, कलासु, अतिनदीष्णः—परमपटुः, धर्मार्थसंहितासु—धर्मार्थसंग्रहेषु, नेदिष्ठः—अतिनिकटवर्ती संलग्न इति यावत्, स्वल्पेऽपि, सुकृते—उपकारे कृते, सुतराम्—अतिशयेन, प्रत्युपकर्ता—प्रत्युपकारकः, कोशवाहनयोः—कोशो धनभाण्डारं वाहनम् अश्वादि तयोः, प्रत्यवेक्षिता—अनुसन्धानकर्ता, सर्वाध्यक्षाणां—प्रधानकर्मकर्तृणां, [यत्नेन, परीक्षिता—परीक्षकः, कृतकर्मणां—कृतं निष्पादितं कर्म कार्यं यैः तेषाम्, अनुरूपैः—योग्यैः, दानमानैः, उत्साहयिता—उत्साहवर्धयिता, दैवमानुषीणां—देवसम्बन्धिनीं मनुष्यसम्बन्धिनीं च, आपदां—विपदां, सद्यः—अविलम्बेन, प्रतिकर्ता—शमयिता, षाड्गुण्योपयोगनिपुणः—षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहादिः तस्य उपयोगे विविच्य प्रयोगे निपुणः कुशलः, मनुमार्गेण—मनूक्तपद्धत्या, चातुर्वर्ण्यस्य—चतुर्वर्णानां, प्रणेता—नायकः पुण्यश्लोकः—पवित्रयशाः, पुण्यवर्मा नाम—पुण्यवर्मेतिनामकः (राजा), आसीत्—बभूव।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर मैंने समीप जाकर किसी लता से वृद्ध को बाहर निकाला और बाँस की नली द्वारा निकाले हुए जल से तथा बाण फेंकने से जितना ऊँचा जा सकता है उतने ऊँचे बड़हर के वृक्ष के अग्रभाग से, पत्थर मारकर गिराये हुए पाँच-छह फलों से उस बालक में चेतना-शक्ति लाकर वृक्ष के नीचे बैठ कर उस वृद्ध से कहा—'तात! यह बालक कौन है? या आप कौन हैं? इस विपत्ति में कैसे पड़ गए?'

वह आँसू से गद्गद कण्ठ होकर बोला—'महोदय! सुनिए। विदर्भ नाम का एक जनपद (देश) है। उसमें भोज-वंश का आभूषण, धर्म के अंशावतार के समान, महाबली, सत्यवादी, दानवीर, विनम्र, प्रजाओं को शिक्षा देने वाला, भृत्यों को अनुरक्त रखने वाला, यशस्वी, उन्नत, बुद्धि और शरीर से अभ्युदय-सम्पन्न, शास्त्र को प्रमाण मानने वाला, साध्य एवं कल्याणकारक कार्य करने वाला,

विद्वानों का सत्कार करने वाला, सेवकों का प्रभाव बढ़ाने वाला, बंधुओं को ऊँचा उठाने वाला, शत्रुओं को परास्त करने वाला, अनाप-सनाप बातों को न सुनने वाला, गुणों से कभी तृप्त न होने वाला, कलाओं में पारंगत, धर्म और अर्थ के संग्रह में संलग्न, तनिक भी उपकार करने पर प्रचुर प्रत्युपकार करने वाला, कोष (खजाना) और वाहन (हाथी, घोड़े आदि) पर निगरानी रखने वाला, सभी कार्याध्यक्षों की यत्नपूर्वक परीक्षा करने वाला, कार्यकर्ताओं को उचित पुरस्कार तथा सम्मान द्वारा प्रोत्साहित करने वाला, दैवी और मानुषी आपदाओं का तुरन्त प्रतीकार करने वाला, (सन्धि, विग्रह आदि) छह गुणों के प्रयोग में निपुण, मनु की बतायी हुई पद्धति से चारों वर्णों की व्यवस्था करने वाला और पवित्र कीर्ति वाला पुण्यवर्मा नामक राजा था।

टिप्पणी--**अभ्येत्य**--पास जाकर। अभि-आ√इ+ल्यप्। **व्रतत्या**--लता से। **उत्तार्य**--ऊपर निकालकर। उद्+तृ+णिच्+क्त्वा+ल्यप्। **वंशनालीमुखोद्धृताभिः**--बाँस की नली से निकाले हुए। वंशस्य नाली, तस्याः मुखम् (ष० त०) तेन उद्धृताः (तृ० त०), ताभिः। यह 'अद्भिः' का विशेषण है। **पञ्चषैः**--पाँच-छह। पञ्च षट् वा प्रमाणं येषां तानि पञ्चषाणि (ब० स०) 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' इति सूत्रेण समासान्तो डच्प्रत्ययः। तैः। यह 'फलैः' का विशेषण है। **शरक्षेपोच्छ्रितस्य**--बाण फेंकने से भी ऊँचे अर्थात् उपर फेंकने पर बाण जितना ऊँचा जा सकता है उससे भी ऊँचे। शरस्य क्षेपः (ष० त०), तस्मात् उच्छ्रितः (प० त०), तस्य। यह 'लकुचवृक्षस्य' (बड़हर के पेड़) का विशेषण है। **पाषाणपातितैः**--पत्थर से गिराये हुए। पाषाणेन पातितानि (तृ० त०), तैः। यह 'फलैः' का विशेषण है। **प्रत्यानीतप्राणवृत्तिम्**--जिसके प्राणों का संचार लौटा दिया गया हो। प्राणानां वृत्तिः (ष० त०) प्रत्यानीता प्राणवृत्तिः यस्य सः (ब० स०), तम्। यह 'बालम्' का विशेषण है। **आपाद्य**--करके। आ√पद्+णिच्+ल्यप्। **तरुतलनिषण्णः**--वृक्ष के नीचे बैठा हुआ। तरोः तलम् (ष० त०), तस्मिन् निषण्णः (स० त०)। **जरन्तम्**--वृक्ष को। √जॄ=जरन्, तम्। **महाभाग**--महोदय। महान् भागो यस्य स महाभागः, तत्सम्बोधने हे महाभाग इति। **वदान्यः**--बहुत देने वाला, अत्यधिक उदार। 'स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे' इत्यमरः।

रञ्जितभृत्यः—अनुचरों को प्रसन्न रखने वाला। रञ्जिताः भृत्याः येन सः (ब०स०)। **उत्थानशीलः**—उन्नतिशील। उत्थानं शीलं स्वभावो यस्य सः (ब० स०)। **शक्यभव्यकल्पारम्भी**—अपने साध्य लोकप्रिय या मंगलमय और न्याययुक्त कार्य करने वाला। 'शक्यं तु सुकरं कर्म भव्यं तु जनलालितम्। कल्पयुक्तेन भङ्गेन सदैवैष समाचरेत्' इति दिवाकरः। शक्यश्च भव्यश्च कल्पश्च (द्व० स०), तान् आरभते इति शक्यभव्यकल्प-आ√रम्+णिनि कर्तरि। **संभावयिता बुधान्**—पण्डितों का आदर करने वाला। सम्√भू+णिच्+तृन्। यहाँ तथा आगे 'प्रभावयिता' आदि में भी तृन् प्रत्यय होने के कारण 'बुधान्' आदि में 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' सूत्र से षष्ठी का निषेध हो जाने के कारण द्वितीया हुई। **प्रभावयिता**—प्रभावशली बनाने वाला। **न्यग्भावयिता**—तिरस्कृत या पराजित करने वाला। **अदत्तकर्णः**—कान न देने वाला, न सुनने वाला। दत्तौ कर्णौ येन सः (ब०स०), न दत्तकर्णः (न०त०)। **अवितृष्णः**—तृष्णा से रहित या विरक्त नहीं। विगता तृष्णा यस्य स वितृष्णः (ब०स०) न वितृष्णः (नञ्तत्०)। **अतिनदीष्णः**—बहुत निपुण। नदीष्णाभिज्ञनिष्ठ-यूतप्रवीणनिपुणा अपि' इत्यमरः। नदी√स्ना+क, षत्व=नदीष्णः, अत्यन्तं नदीष्णः अतिनदीष्णः प्रा०स०। **कलासु**—६४ कलाओं में। **नेदिष्ठः**—अत्यन्त समीपवर्ती। अन्तिक+इष्ठन् 'अन्तिकबाढयोनदसाधौ' इस सूत्र से अन्तिक के स्थान में नेद आदेश। **धर्मार्थसंहितासु**—धर्म और अर्थ के संचय में। धर्मश्च अर्थश्च धर्मार्थौ (द्व०स०), तयोः संहिताः तासु। **कृतकर्मणाम्**—जिन्होंने कार्य सम्पन्न कर दिये हैं। कृतं कर्म यैः ते कृतकर्माणः (ब०स०), तेषाम्। **दैवमानुषीणाम्**—दैव तथा मनुष्यों द्वारा की गई। दैव्यश्च ताः मानुष्यः इति दैवमानुष्यः (कर्म०स०), तासाम्। दैवी तथा मानुषी आपदायें ये हैं—'हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरणं तथा। इति पञ्चविधं दैवं मानुषं व्यसनं ततः। आयुक्तकेभ्यश्चौरेभ्यः परेभ्यो राष्ट्रविप्लवात्। पृथिवीपतिलोभाच्च नराणां पञ्चधा मतम्॥' **षाड्गुण्योपयोगनिपुणः**—छह गुणों के उपयोग में दक्ष। षट् च ते गुणाः षड्गुणाः (कर्म० स०), षड्गुणा एव षड्गुण्यम् षड्गुण+ष्यञ् स्वार्थे। षाड्गुण्यस्य उपयोगः (ष० त०), तस्मिन् निपुणः (स०त०)। छह गुण ये हैं—'सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः

प्रभावोत्साहमन्त्रजाः ॥' इत्यमरः। सन्धि=मेल, सुलह करना। विग्रह=युद्ध। यान=आक्रमण। आसन=स्थिति, आक्रमण के अवसर की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना। द्वैधीभाव=सन्धि और विग्रह दोनों प्रकारों से चलना। समाश्रय=बलवान् राजा का सहारा लेना। **चातुर्वर्ण्यस्य**—चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का। चत्वारो वर्णाः (कर्म स०), चतुर्वर्णा एव चातुर्वर्ण्यम् चतुर्वर्ण+ष्यञ् स्वार्थे। तस्य। **पुण्यश्लोकः**—पवित्र कीर्ति वाला। पुण्यः (पवित्रः) श्लोकः (यशः) यस्य सः (ब० स०)।

स पुण्यैः कर्मभिः प्राप्य पुरुषायुषम्, पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यतामरेषु। तदनन्तरमनन्तवर्मा नाम तदायतिरवनिमध्यतिष्ठत्। स सर्वगुणैः समृद्धोऽपि दैवाद्दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत्। तमेकदा रहसि वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धः पितुरस्य बहुमतः प्रगल्भवागभाषत—

'तात! सर्वैवात्मसम्पदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैवात्रभवति लक्ष्यते। बुद्धिश्च निसर्गपट्वी, कलासु नृत्यगीतादिषु चित्रेषु च काव्यविस्तरेषु प्राप्तविस्तरा तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते। तथाप्यसावप्रतिपद्यात्मसंस्कारमर्थशास्त्रेषु, अनग्नि-संशोधितेव हेमजातिर्नातिभाति बुद्धिः। बुद्धिहीनो हि भूभृदत्युच्छ्रितोऽपि परै-रध्यारुह्यमाणमात्मानं न चेतयते। न च शक्तः साध्यं साधनं वा विभज्य वर्तितुम्। अयथावृतश्च कर्मसु प्रतिहन्यमानः स्वैः परैश्च परिभूयते न चाव-ज्ञातस्याज्ञा प्रभवति प्रजानां योगक्षेमाराधनाय। अतिक्रान्तशासनाश्च प्रजा यत्किञ्चनवादिन्यो यथाकथञ्चिद्वर्तिन्यः सर्वाः स्थितीः संकिरेयुः। निर्मर्यादश्च लोको लोकादितोऽमुतश्च स्वामिनमात्मानं च भ्रंशयते। आगमदीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा। दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहि-तविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नामाप्रतिहतवृत्ति। तेन हीनः सतोरप्यायत-विशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय बाह्यविद्या-स्वभिषङ्गमागमय दण्डनीतिं कुलविद्यां तदर्थानुष्ठानेन चार्वाजितशक्तिसिद्धिरस्ख-लितशासनः शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्' इति।

संस्कृत व्याख्या—सः—पुण्यवर्मा, पुण्यैः कर्मभिः—यज्ञदानादिभिः, पुरु-षायुषं—पूर्णमायुः शतं वर्षाणीति यावत्, प्राप्य—लब्ध्वा, पुनः—भूयः, प्रजानाम्, अपुण्येन—पापेन, अमरेषु—देवेषु, अगण्यत—गणितः स्वर्गं जगामेत्यर्थः।

तदनन्तरम्—तत्पश्चात्, अनन्तवर्मा नाम, तदायतिः—तस्मात् पुण्यवर्मण आयतिः प्रभावो यस्य तत्पुत्र इत्यर्थः, अवनिम्—पृथ्वीम्, अध्यतिष्ठत्—अशात्। सः—अनन्तवर्मा, सर्वगुणैः समृद्धोऽपि—सकलगुणयुक्तोऽपि, दैवात्—विधिवशात्, दण्डनीत्यां—राजनीतौ, न, अत्यादृतः—आदरवान्, अभूत्। तम्, एकदा, रहसि—एकान्ते, अस्य पितुः—पुण्यवर्मणः, बहुमतः—सम्मानितः, प्रगल्भवाक्—वाक्पटुः, वसुरक्षितः, नाम, मन्त्रिवृद्धः—वृद्धामात्यः, अभाषत—कथितवान्—

'तात, सर्वैव—सकलैव, आत्मसम्पत्—पुरुषगुणपरम्परा, अभिजनात्प्रभृति—कुलक्रमानुसारेण, अन्यूना—अहीना, एव अत्रभवति—त्वयि, लक्ष्यते—दृश्यते। तव बुद्धिश्च, निसर्गपट्वी—निसर्गात् स्वभावात् पट्वी पटुः, कलासु, नृत्यगीतादिषु, चित्रेषु, काव्यविस्तरेषु, प्राप्तविस्तरा—लब्धप्रसरा, इतरेभ्यः—अपरलोकेभ्यः, प्रतिविशिष्यते—विशिष्टा अस्ति। तथापि, असौ—बुद्धिः, अर्थशास्त्रेषु—दण्डनीत्यादिषु, आत्मसंस्कारं—स्वशुद्धिम्, अप्रतिपद्य—अप्राप्य, अनग्निसंशोधिता, हेमजातिः—सुवर्णम्, इव, बुद्धिः, न अतिभाति—नातिमात्रं शोभते। बुद्धिहीनः, भूभृत्—राजा, अत्युच्छ्रितोऽपि—अत्युन्नतोऽपि, परैः—शत्रुभिः, अध्यारुह्यमाणम्—आक्रम्यमाणम्, आत्मानं—स्वं, न चेतयते—ज्ञातुं न प्रभवति। न च, शक्तः—समर्थः, साध्यं—कार्यं, साधनं—कारणं, वा, विभज्य—विविच्य, वर्तितुं—व्यवहर्तुम्। अयथावृत्तश्च—यथोचितमनाचरन्नित्यर्थः, कर्मसु—कार्येषु प्रतिहन्यमानः—प्रतिरुध्यमानः, स्वैः—आत्मीयैः, परैश्च—शत्रुभिश्च, परिभूयते—अवज्ञायते। न च, अवज्ञातस्य—अपमानितस्य (राज्ञः) आज्ञा—आदेशः, प्रजानां, योगक्षेमाराधनाय—योगः अप्राप्तप्रापणं क्षेमः लब्धस्य संरक्षणं तयोः आराधनाय—साधनाय, प्रभवति—समर्था भवति। अतिक्रान्तशासनाश्च—अतिक्रान्तं लङ्घितं शासनं नृपादेशो याभिस्तादृश्यः, प्रजाः, यत्किञ्चनवादिन्यः—अनियन्त्रितभाषिण्यः, यथाकथञ्चिद्वर्तिन्यः—यथेच्छं विहरन्त्यः, सर्वाः, स्थितीः—मर्यादाः, संकिरेयुः—विक्षिपेयुः उल्लङ्घयेयुरित्यर्थः। निर्मर्यादश्च—मर्यादारहितश्च, लोकः, इतो—लोकात्, अमुतश्च—परलोकात् च, स्वामिनम्, आत्मानं च, भ्रंशयते—पातयति। लोकयात्रा—लोकस्थितिः, आगमदीपदृष्टेन—आगमः शास्त्रमेव दीपः तेन दृष्टेन निर्दिष्टेन, अध्वना—मार्गेण, सुखेन—

आनन्देन, खलु वर्तते। हि—यतः, शास्त्रं नाम भूतभवद्भविष्यत्सु—त्रिकालेष्वित्यर्थः, व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च—व्यवहिताः विषयान्तरेणाच्छादिताश्च विप्रकृष्टाः असन्निहिताः तेषु, विषयेषु—पदार्थेषु, अप्रतिहतवृत्ति—अप्रतिहता अकुण्ठिता वृत्तिः प्रसरो यस्य तादृशम्। तेन—शास्त्रचक्षुषा, हीनः—रहितः, जन्तुः—प्राणी, सतोरपि—विद्यमानयोरपि, आयतविशालयोः—दीर्घमहतोः, लोचनयोः—नेत्रयोः, अन्ध एव, अर्थदर्शनेषु—विषयज्ञानेषु, असामर्थ्यात्—अक्षमत्वात्। अतः, बाह्यविद्यासु—नीतिविद्येतरविद्यासु, अभिषङ्गम्—आसक्तिम्, विहाय—त्यक्त्वा, कुलविद्यां, दण्डनीतिम् आगमय—लभस्व, तदर्थानुष्ठानेन च—तस्या दण्डनीतेः अर्थस्य अनुष्ठानेन पर्यालोचनेन, च, आवर्जितशक्तिसिद्धिः—आवर्जिता प्राप्ता शक्तिः सामर्थ्यं सिद्धिः कार्यसिद्धिश्च येन तादृशः, अस्खलितशासनः—अप्रतिहताज्ञः, (सन्) उदधिमेखलाम्—उदधिः समुद्रो मेखला रशना यस्याः तथाभूतां ससागरामित्यर्थः, उर्वी—पृथ्वीम्, चिरं—दीर्घकालं, शाधि—पालय।

हिन्दी अनुवाद—वह पुण्य कर्मों से दीर्घायु प्राप्त करके पुनः प्रजाओं के पाप के कारण देवताओं में गिना जाने लगा अर्थात् स्वर्गीय हो गया। तदनन्तर उसका अनन्तवर्मा नामक पुत्र पृथ्वी पर बैठा अर्थात् शासन करने लगा। वह (अनन्तवर्मा) सब गुणों से परिपूर्ण होने पर भी दैववश राजनीति में अधिक अभिरुचि नहीं लेता था। उससे एक दिन एकान्त में उसके पिता के सम्मान्य तथा प्रौढ वचन बोलने वाले वृद्ध मंत्री वसुरक्षित ने कहा—

'तात! श्रीमान् में सभी आत्म-सम्पदायें (पुरुषोचित गुण) वंश-परम्परा के अनुसार पूर्ण रूप से दिखाई पड़ती हैं। आपकी स्वभावतः निपुण एवं नृत्य, गीत आदि कलाओं, चित्रों तथा काव्यचरनाओं में विशालता को प्राप्त की हुई बुद्धि भी और लोगों से बढ़-चढ़ कर है। तो भी वह अर्थशास्त्रों में अपनी शुद्धि को न पाकर अग्नि में बिना तपाये हुए सोने के समान अधिक शोभा नहीं देती। बुद्धिहीन राजा बहुत उन्नत होने पर भी शत्रुओं के द्वारा आक्रान्त होते हुए अपने आपको नहीं समझ पाता। वह कार्य और कारण का विवेचन करके व्यवहार करने में भी समर्थ नहीं होता। योग्य चरित्र से हीन वह राजा कार्यों में असफल होता हुआ अपने लोगों तथा अन्य लोगों से तिरस्कृत होता है।

उस अपमानित राजा की आज्ञा प्रजाओं के योग-क्षेम सिद्ध करने में समर्थ नहीं होती। (ऐसी स्थिति में) शासन का उल्लंघन करने वाली प्रजायें यथेच्छ बोलने वाली और मनमानी करने वाली होकर सारी मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न कर देती हैं। मर्यादाहीन प्रजायें स्वामी को तथा अपने को इस लोक से और परलोक से भ्रष्ट कर देती हैं। संसार की स्थिति तो शास्त्र रूपी दीपक से देखे हुए मार्ग (पर चलने) से आनन्दपूर्वक होती है। शास्त्र वह दिव्य नेत्र है, जिसकी गति भूत, वर्तमान और भविष्य में व्यवधानयुक्त तथा सुदूरवर्ती पदार्थों में भी अप्रतिहत रूप से (बिना रुकावट के) होती है। उस (दिव्य नेत्र) से हीन प्राणी लंबी-चौड़ी आँखों के रहते हुए भी, विषयों के ज्ञान करने में असमर्थ होने के कारण अंधा ही है। इसलिए बाहरी विद्याओं में आसक्ति त्याग कर अपनी खानदानी विद्या राजनीति सीखो और उसके अनुशीलन से शक्ति तथा सिद्धि प्राप्त कर अव्याहत (रुकावट रहित) आज्ञा वाला बनकर चिरकाल तक समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करो।'

टिप्पणी—पुरुषायुषम्—पुरुष की पूर्णायु अर्थात् १२० वर्ष या १०० वर्ष। पुरुषस्य आयुः(ष० त०), 'अचतुरविचतुर'—इत्यादिना अच् सासमान्तः, तत्। **तदायतिः**—तस्मात् आयतिः यस्य सः (ब० स०)। उस (पुण्यवर्मा) के कारण प्रभावशाली अर्थात् उसका पुत्र। **अवनिम् अध्यतिष्ठत्**—पृथ्वी पर बैठा अर्थात् शासन करने लगा। अधि√स्था+लङ=अध्यतिष्ठत्। इसके योग से 'अवनिम्' में 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से द्वितीया हुई है। **मन्त्रिवृद्धः**—मन्त्रियों में वृद्ध। मन्त्रिणां मन्त्रिषु वा वृद्धः (ष० त० वा स० त०)। **पितुः बहुमतः**—पिता का सम्मानित। पितुः में 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से षष्ठी हुई है। **प्रगल्भ-वाक्**—प्रौढवक्ता, वाक्पटु। प्रगल्भा वाक् यस्य सः (ब० स०)। **आत्मसम्पद्**—पुरुषगुणपरम्परा, वैयक्तिक गुण। आत्मनः सम्पत् आत्मसम्पत् (ष० त०)। **अभिजनात् प्रभृति**—वंश आदि से। **अन्यूना**—कम नहीं, विपुल। **अत्रभवति**—श्रीमान् में। आदरसूचनार्थ भवत् शब्द के साथ अत्र और तत्र शब्द जोड़ दिये जाते हैं। किन्तु दूरस्थ व्यक्ति के लिए 'तत्रभवान्' और निकटस्थ के लिए 'अत्रभवान्' का प्रयोग होता है। **निसर्गपट्वी**—स्वभाव से ही निपुण। निसर्गेण पट्वी इति निसर्गपट्वी (तृ० त०)। **नृत्यगीतादिषु**—नृत्यं च गीतं च इति

नृत्यगीते (द्व०स०), ते आदौ यासां ताः (ब० स०), तासु। यह 'कलासु' का विशेषण है। अथवा इसका स्वतन्त्र प्रयोग भी हो सकता है। **काव्यविस्तरेषु**—काव्य के विस्तार या क्षेत्र में। वि√स्तॄ+अप्=विस्तरः। शब्द के अर्थ में 'विस्तरः' प्रयोग होता है और अन्यत्र 'विस्तारः'। यथा—'ग्रन्थस्य विस्तरः', 'पटस्य विस्तारः। देखिए—सिद्धान्तकौमुदी में 'प्रथने वावशब्दे' सूत्र के उदाहरण। **आत्मसंस्कारम्**—अपना संस्कार या परिष्कार। **अनग्निसंशोधिता**—अग्नि में शुद्ध न की हुई। यह 'हेमजातिः' का विशेषण है। अग्नौ शोधिता इति अग्निशोधिता (स० त०), न अग्निशोधिता इति अनग्निशोधिता (न० त०) **हेमजातिः**—सोने की जाति, सुवर्ण। **अत्युच्छ्रितोऽपि**—बहुत ऊँचा होने पर भी। **अध्यारुह्यमाणम्**—आक्रमण किये जाते हुए। अधि-आ√रुह्+कर्मणि लट्—शानच्। **न चेतयते**—नहीं चेतता है, नहीं समझता है। **विभज्य**—अलग-अलग करके। **वर्तितुम्**—व्यवहार करने के लिए। **अयथावृत्तः**—जिसका आचरण ठीक न हो, योग्य चरित्र से हीन। यथा उचितं वृत्तं चरित्रं यस्य स यथावृत्तः (ब० स०), न यथावृत्तः अयथावृत्तः (न० त०)। **प्रतिहन्यमानः**—असफल होता हुआ। प्रति√हन्+कर्मणि शानच्। **परिभूयते**—अपमानित किया जाता है। परि√भू+कर्मणि लट्। **योगक्षेमाराधनाय**—योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) को साधने के लिए। 'अप्राप्त-प्रापणं योगः क्षेमः प्राप्तस्य रक्षणम्। द्वयं च साधयेद्भूयः प्रजानां विधिवत्प्रदः॥ 'आराधनं साधने स्यादवाप्तौ तोषणेऽपि च'। योगश्च क्षेमश्च इति योगक्षेमौ (द्व० स०), तयोः आराधनम् (ष० त०) तस्मै। यहाँ 'नमः स्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च' सूत्र से अलमर्थक प्रभवति के योग में चतुर्थी हुई है। सिद्धान्तकौमुदी में कहा है—'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो प्रभुरलं समर्थः शक्त इत्यादि।' **अतिक्रान्तशासनः**—राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाली। अतिक्रान्तं शासनं याभिः ताः (ब० स०)। **यत्किञ्चनवादिन्यः**—जो कुछ बोलने वाली अर्थात् जो ही चाहती हैं वही कहने लगती हैं। यत्किञ्चन वदितुं शीलमासाम् इति यत्किञ्चन√वद्+णिनि। **यथाकथञ्चिद्वर्तिन्यः**—जिस किसी प्रकार अर्थात् जैसा चाहती हैं वैसा बरतने लगती हैं। यथाकथञ्चित् वर्तितुं शीलमासाम् इति यथाकथञ्चित्√वृत्+णिनि। **निर्मर्यादः**—मर्यादा से

रहित। निर्गता मर्यादा यस्मात् सः (ब० स०) अथवा मर्यादायाः निर्गतः इति निर्मर्यादः 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इत्यनेन प्रादिसमासः। **इतः**—यहाँ से। इदम्+तसिल्। **अमुतः**—वहाँ से। अदस्+तसिल्। **आगमदीपदृष्टेन**—शास्त्र रूपी दीपक से देखे गये। आगमः एव दीपः (कर्म० स०), तेन दृष्टः (तृ० त०), तेन। **लोकयात्रा**—संसार की स्थिति। **व्यवहितविप्रकृष्टादिषु**—अन्तरित या व्यवधानयुक्त और दूरवर्ती आदि। व्यवहिताश्च विप्रकृष्टाश्च ते व्यवहितविप्रकृष्टाः (कर्म० स०), ते आदौ येषां ते (ब० स०), तेषु। **अप्रतिहतवृत्ति**—जिसकी वृत्ति या गति में कोई रुकावट न हो। अप्रतिहता वृत्तिः यस्य तत् (ब० स०)। **लोचनयोः**—यहाँ 'षष्ठी चानादरे' सूत्र से षष्ठी हुई है। **अभिषङ्गम्**—आसक्ति को। अभि√सञ्ज्+घञ्=अभिषङ्गः, तम्। **आगमय**—प्राप्त करो। गमिरत्र स्वार्थे णिजन्तः। **आवर्जितशक्तिसिद्धिः**—जिसने सामर्थ्य और सिद्धि को प्राप्त कर लिया हो। आवर्जिता शक्तिः सिद्धिश्च येन सः अथवा आवर्जिता शक्तीनां सिद्धिः येन सः (ब० स०)। शक्तियाँ तीन कही गई हैं—प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति। **अस्खलितशासनः**—जिसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया जा सके। स्खलितं शासनं यस्य स स्खलितशासनः (ब० स०), न स्खलितशासनः अस्खलितशासनः (न० त०)। **शाधि**—शासन करो। √शास्+लोट्–सिप्। **उदधिमेखलाम्**—जिसकी करधनी समुद्र है अर्थात् समुद्र पर्यन्त। उदधिः मेखला यस्याः सा (ब० स०), ताम्। **उर्वीम्**—पृथ्वी को।

एतदाकर्ण्य 'स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम्। तथा क्रियते' इत्यन्तःपुरमविशत्। तां च वार्तां पार्थिवेन प्रमदासन्निधौ प्रसङ्गेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशलः प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वबाह्यो बाह्यनारीपरायणः पटुरयन्त्रितमुखो बहुभङ्गिविशारदः परमर्मान्वेषणपरः परिहासयिता परिवादरुचिः पैशुन्यपण्डितः सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुर्नयोपाध्यायः कामतन्त्रकर्णधारः कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्वं व्यज्ञपयत्—

संस्कृत व्याख्या—एतत्, आकर्ण्य—श्रुत्वा, गुरुभिः—श्रीमद्भिः, स्थान एव—युक्तमेव, अनुशिष्टम्—उपदिष्टम्। तथा क्रियते—एवमेव करिष्यामि, इति (उक्त्वा) अन्तः पुरम्—अवरोधम्, अविशत्—अगच्छत्। पार्थिवेन—राज्ञा,

प्रमदासंनिधौ—स्त्रीणां समीपे, प्रसङ्गेन—वार्ताक्रमेण, उदीरितां—कथितां, वार्ताम्—उदन्तम्, उपनिशम्य—श्रुत्वा, समीपोपविष्टः—निकटे आसीनः, चित्तानुवृत्तिकुशलः—चेतोऽनुसरणप्रवीणः, प्रसादवित्तः—प्रसादेन राजानुग्रहेण वित्तः ख्यातः, गीतनृत्यवाद्यादिषु, अबाह्यः—बहिर्भूतो न आसक्त इत्यर्थः, बाह्यनारीपरायणः—वेश्यारतः, पटुः—चतुरः, अयन्त्रितमुखः—असंयतमुखः बहुभाषीत्यर्थः, बहुभङ्गिविशारदः—वक्रोक्तिचतुरः, परमर्मान्वेषणपरः—परेषां मर्म गुह्यं तदन्वेषणपरः तदनुसन्धायीत्यर्थः, परिहासयिता, परिवादरुचिः—परनिन्दारसिकः, पैशुन्यपण्डितः—खलतानिपुणः, सचिवमण्डलादपि—मन्त्रिसमूहादपि, उत्कोचहारी—गुप्तरूपेण द्रव्यग्रहणपरः, सकलदुर्नयोपाध्यायः—सकलानां समस्तानां दुर्नयानां दुश्चेष्टितानाम् उपाध्यायः आचार्यः, कामतन्त्रकर्णधारः—कामतन्त्रस्य कामव्यापारस्य कर्णधारः नाविकः, कुमारसेवकः—कुमारावस्थामारभ्य राज्ञः परिचारकः, विहारभद्रो नाम (जनः), स्मितपूर्वं—मन्दहास्यसहितं, व्यज्ञपयत्—न्यवेदयत्—

हिन्दी अनुवाद—यह सुनकर वह (अनन्तवर्मा) गुरु (आप) ने उचित ही उपदेश दिया है। ऐसा ही किया जाएगा।' ऐसा कहकर अन्तःपुर (रनिवास) में चला गया। स्त्रियों के समीप राजा द्वारा प्रसंगवश कही गई (मंत्री की उपदेश वाली) उस बात को सुनकर पास ही बैठा हुआ, चित्तवृत्ति का अनुसरण करने में (अर्थात् दूसरे का भाव भाँपने में) कुशल, राजकृपा के कारण प्रसिद्ध, गीत, नृत्य और वाद्य आदि में निरत, वेश्याओं में आसक्त, प्रवीण, मुँहफट, व्यंग्य बोलने में चतुर, औरों के गुप्त भेद जानने में तत्पर, हँसाने वाला, निन्दा में रुचि रखने वाला, चुगलखोरी में पण्डित, मन्त्रियों से भी घूस लेने वाला, समस्त दुर्नीतियों का आचार्य, कामशास्त्र का कर्णधार और बाल्यावस्था से ही राजा का सेवक विहारभद्र मुसकराहट के साथ निवेदन करने लगा—

टिप्पणी—**स्थाने**—उचित। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः। **अनुशिष्टम्**—उपदेश दिया। अनु√शास्+क्त। **पार्थिवेन**—राजा द्वारा। पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः पृथिवी+अण्, तेन। **प्रमदासन्निधौ**—रमणियों के समीप। प्रमदानां सन्निधिः (ष० त०), तस्मिन्। **उदीरिताम्**—कही गई। उद्√ईर्+क्त+टाप्। **उपनिशम्य**—सुनकर। उप—नि√शम्+क्त्वा—ल्यप्। **चित्तानुवृत्तिकुशलः**—

(परकीय) चित्त के अनुसार चलने में या दूसरे का भाव समझने में निपुण। चित्तस्य अनुवृत्तिः (ष० त०), तस्यां कुशलः (स० त०)। **प्रसादवित्तः**— (राजा की) कृपा से प्रसिद्ध। प्रसादेन (राजकृपया) वित्तः (प्रसिद्धः) (तृ० त०)। अथवा प्रसादः पुरस्काररूपेण दत्तं वस्तु वित्तं धनं यस्य तथाभूतः राजप्रसादघनजीवीत्यर्थः। अथवा प्रसन्नताकरणमेव वित्तं वित्तसाधनमस्य इति प्रसादवित्तः प्रसन्नतोपार्जनपटुरित्यर्थः। **अबाह्यः**—बाहरी नहीं, भीतर पहुँचा हुआ, निरत। न बाह्यः अबाह्यः (न० त०)। **बाह्यनारीपरायणः**—बाहर की स्त्रियों—वेश्याओं या दूसरे की स्त्रियों में आसक्त। बाह्याश्च ताः नार्यः इति बाह्यनार्यः (कर्म० स०), तासु परायणः इति बाह्यनारीपरायणः (स० त०)। **अयन्त्रितमुखः**—जिसके मुँह में कोई नियन्त्रण न हो, मनमानी बोलने वाला, मुँहफट। यन्त्रितं मुखं यस्य स यन्त्रितमुखः (ब० स०), न यन्त्रितमुखः अयन्त्रितमुखः (न० त०)। **बहुभङ्गिविशारदः**—व्यंग्य बोलने में चतुर। बह्व्यश्च ताः भङ्ग्यश्च बहुभङ्ग्यः (कर्म० स०), तासु विशारदः बहुभङ्गिविशारदः (स० त०)। 'भङ्गि' स्याद् वक्रभाषितम्' इति वैजयन्ती। **परमर्मान्वेषणपरः**—दूसरों के रहस्य का पता लगाने में तत्पर। परेषां मर्माणि (ष० त०), तेषाम् अन्वेषणम् (ष० त०), परमर्मान्वेषणम् एव परं प्रधानं कर्म यस्य स परमर्मान्वेषणपरः (ब० स)। **परिहासयिता**—हँसाने वाला। परि√हस्+णिच्+तृच्। **परिवादरुचिः**—(दूसरे की) निन्दा (करने या सुनने) में रुचि लेने वाला। परिवादे रुचिः यस्य सः (ब० स०)। **पैशुन्यपण्डितः**—चुगलखोरी में पंडित। पिशुनस्य भावः पैशुन्यम् पिशुन+ष्यञ्। पैशुन्ये पंडितः (स० त०)। **उत्कोचहारी**—घूस लेने वाला। उत्कोचं हर्तुं शीलमस्य इति उत्कोच√हृ+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये। **सकलदुर्नयोपाध्यायः**—सारे अनर्थों या बुराइयों के आचार्य। सकलाः दुर्नयाः (कर्म० स०), तेषाम् उपाध्यायः (ष० त०)। **कामतन्त्रकर्णधारः**—कामशास्त्र के कर्णधार या नेता। **कुमारसेवकः**—कुमारावस्था से सेवक। कुमारावस्थाप्रभृति सेवकः कुमारसेवकः (मध्य० स०)। **स्मितपूर्वम्**—मुसकराहट के साथ। स्मितं पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तत् स्मितपूर्वम् (ब० स०)। यह क्रियाविशेषण है। **व्यज्ञपयत्**—निवेदन किया। वि√ज्ञप्+णिच्+लङ्—तिप्।

'देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद्भाजनं भवति विभूतेः, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनैः कदर्थयन्तः स्वार्थं साधयन्ति धूर्ताः। तथाहि—केचित्प्रेत्य किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिरः, बद्ध्वा दर्भरज्जुभिः, अजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशनं च शाययित्वा, सर्वस्वं स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतराः पाषण्डिनः पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित् पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगतं त्यक्तुमिच्छेत् तमन्ये परिवार्याहुः—'एकामपि काकिणीं कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून्घातयेम एकशरीरमात्रमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचर्यते' इति।

संस्कृत व्याख्या—देव—महाराज, यदि—चेत्, कश्चित् (जनः), दैवानुग्रहेण—भाग्यानुकूल्येन, विभूतेः—ऐश्वर्यस्य, भाजनं—पात्रं, भवति, तम्, अकस्मात्, उच्चावचैः—नानाविधैः, उपप्रलोभनैः—लोभप्रदर्शनैः, कदर्थयन्तः—क्लेशयन्तः, धूर्ताः, स्वार्थं—स्वकार्यं, साधयन्ति—निष्पादयन्ति। तथाहि—केचित्—केचन धूर्ताः, प्रेत्य—मरणानन्तरं, किल—निश्चयेन, लभ्यैः—प्राप्यैः, अभ्युदयातिशयैः—ऐश्वर्यबाहुल्यैः, आशाम्, उत्पाद्य—जनयित्वा, शिरः मुण्डयित्वा—शिरः केशानां वपनं कारयित्वा, दर्भरज्जुभिः—कुशनिर्मितरज्जुभिः, बद्ध्वा, अजिनेन—मृगचर्मणा, आच्छाद्य—परिवेष्ट्य, नवनीतेन—हैयंगवीनेन, उपलिप्य—लेपनं कृत्वा, अनशनम्—अनाहारं, शाययित्वा, सर्वस्वं—सर्वं धनं, स्वीकरिष्यन्ति—ग्रहीष्यन्ति। तेभ्यः—धूर्तेभ्यः, अपि घोरतराः—अधिकभयङ्कराः, पाषण्डिनः—पाषण्डाः, पुत्रदारशरीरजीवितानि—पुत्रस्त्रीदेहप्राणानपि, मोचयन्ति—त्याजयन्ति। यदि, कश्चित्, पटुजातीयः—पटुप्रकारः, न, अस्यै—अनन्तरोक्तायै, मृगतृष्णिकायै—मरीचिकायै, हस्तगतं—करस्थं, (धनं), त्यक्तुम्, इच्छेत्, तम्—पटुजातीयम्, अन्ये—अपरे राजनीतिज्ञा इति यावत्, परिवार्य—परिवृतं कृत्वा, आहुः—कथयन्ति, एकामपि, काकिणीं—वराटकाविंशतिमित्यर्थः, कार्षापणलक्षम्—षोडशपणानां लक्षमित्यर्थः, आपादयेम—कर्तुं शक्नुयाम, शस्त्रादृते—शस्त्रं विना, सर्वशत्रून्, घातयेम—विनाशयेम, एकशरीरमात्रमपि—एकाकिनमपि, मर्त्यं—मनुष्यं, चक्रवर्तिनं—सम्राजं, विदधीमहि—कर्तुं शक्नुयाम, यदि, अस्मदुद्दिष्टेन—अस्माभिः प्रदर्शितेन, मार्गेण, आचर्यते—अनुष्ठीयते।

हिन्दी अनुवाद—'महाराज ! यदि भाग्य की कृपा से कोई व्यक्ति ऐश्वर्य का पात्र हो जाता है तो उसे अकस्मात् अनेक प्रकार के प्रलोभनों से तंग करते हुए धूर्त लोग (अपना) स्वार्थ सिद्ध करते हैं। जैसे—कोई धूर्त मरने के वाद मिलने वाले प्रचुर ऐश्वर्यों की आशा दिलाकर, सिर मुँड़वाकर, कुश की रस्सी से बाँधकर, मृगचर्म से ढककर, मक्खन से लेपकर, निराहार सुलाकर, (उसका) सारा धन ले लेते हैं। उनसे भी अधिक भयंकर पाषंडी लोग (उसे) स्त्री, पुत्र, शरीर और प्राणों से भी अलग कर देते हैं। यदि कोई चतुर सदृश व्यक्ति इस मृगतृष्णा (मिथ्या आशा) के लिए अपने हस्तगत धन को नहीं छोड़ना चाहे तो उसे दूसरे (राजनीतिज्ञ) लोग घेरकर कहते हैं—'यदि हमारे बताये हुए मार्ग से चला जाय तो हम एक काकिणी को लाख कार्षापण बनवा सकते हैं, बिना शस्त्र के भी शत्रुओं का संहार करा सकते हैं और केवल शरीर मात्र धारण करने वाले पुरुष को भी चक्रवर्ती राजा बना सकते हैं।

टिप्पणी—**उच्चावचैः**—ऊँचे-नीचे अर्थात् विविध प्रकार के। उदञ्चि च अवाञ्चि च इति उच्चावचानि (मयू० त० स०), तैः। **उपप्रलोभनैः**—लालचों से। **कदर्थयन्तः**—पीड़ित या तंग करते हुए। कुत्सितः अर्थः कदर्थः (प्रा० स०) कदर्थ (नामधातु)+णिच्+लट्—शतृ। **प्रेत्य**—मृत्यु के वाद, परलोक में। 'प्रेत्यामुत्र भवान्तरे' इत्यमरः। **लभ्यैः**—प्राप्त होने योग्य। √लभ्+यत्। **अभ्युदयातिशयैः**—ऐश्वर्य की अधिकता से। अभ्युदयस्य अतिशयाः (ष० त०), तैः। **किल**—निश्चित रूप से। यह एक अव्यय है। यहाँ इसका अर्थ मिथ्या भी हो सकता है, अर्थात् ऐश्वर्य-लाभ की बात असत्य है। **दर्भरज्जुभिः**—कुशों की रस्सी से। दर्भनिर्मिता रज्जवः (मध्य० स०), ताभिः। **अजिनेन**—काले मृग के चमड़े से। **नवनीतेन**—मक्खन से। **अनशनम्**—भोजन-रहित। न विद्यते अशनं यस्मिन् कर्मणि तद् (न० ब०) यथा स्यात् तथा। **शाययित्वा**—सुलाकर, लेटाकर। √शी+णिच्+क्त्वा। **सर्वस्वम्**—सारा धन। सर्वं च तत स्वम् (कर्म० स०)। **स्वीकरिष्यन्ति**—आत्मसात् कर लेते हैं। यहाँ वर्तमान अर्थ में 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लृट् लकार हुआ है। **घोरतराः**—अधिक भयंकर। अतिशयेन घोराः इति घोरतराः घोर+तरप्। **पाषण्डिनः**—पाखंडी लोग। वेदविहित धर्म का परित्याग कर वेद-विरुद्ध धर्म

का अवलम्बन करने वाले। पाषण्डं विद्यते एषाम् इति पाषण्ड+इनि। **पुत्रदारशरीरजीवितानि**—पुत्राश्च दाराश्च शरीरं च जीवितं च इति पुत्रदारशरीरजीवितानि (द्व० स०)। **पटुजातीयः**—चतुर ढंग का। पटुप्रकारः पटुजातीयः पटु+जातीयर्। **मृगतृष्णिकायै**—मिथ्या आशाओं के लिए। कड़ी धूप में रेतीले मैदानों में होने वाली जलधारा की मिथ्या प्रतीति को मृगतृष्णा कहते हैं। उसी के समान मिथ्या वस्तु के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। **हस्तगतम्**—हाथ में स्थित। हस्तं गतम् प्राप्तम् इति हस्तगतम् 'द्वितीया श्रितातीत—इत्यादिना (द्वि० त०)। **परिवार्य**—घेरकर। परि√वृ+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **काकिणीम्**—बीस कौड़ियों की एक काकिणी होती है, उसको। 'वराटकानां दशकद्वयं यत् सा काकिणी' लीलावती। **कार्षापणलक्षम्**—सोलह पण (पैसे) का एक कार्षापण होता है, उसका एक लाख। 'कार्षापणः कार्षिके स्यात् पणषोडशकेऽपि च' इति विश्वः। **आपादयेम**—प्राप्त करा दें, बनवा दें। आ√पद्+णिच्+लिङ—मस्। **शस्त्रात् ऋते**—विना शस्त्र के। यहाँ ऋते के योग में 'अन्यारादितरर्ते'—सूत्र से पंचमी हुई है। **घातयेम**—मरवा दें। √हन्+णिच्+लिङ—मस्। **एकशरीरमात्रमपि**—जिसके पास केवल शरीर मात्र हो, एकाकी। शरीरम् एव इति शरीरमात्रम् (मयू० त० स०), एकं शरीरमात्रं यस्य स एकशरीरमात्रः, तम्। **विदधीमहि**—कर दें। वि√धा+लिङ—महि। **अस्मदुद्दिष्टेन**—हमारे कहे हुए। उद्√दिश्+क्त=उद्दिष्टः, अस्माभिः उद्दिष्टः (तृ० त०), तेन।

स पुनरिमान्प्रत्याह—'कोऽसौ मार्गः' इति। पुनरिमे ब्रुवते—'ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्तान्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम्। अधीष्व तावद्दण्डनीतिम्। इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा' इति। स 'तथा' इत्यधीते शृणोति च। तत्रैव जरां गच्छति। तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरानुबन्धि। सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽधिगंस्यते। भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगतिः। अधिगतशास्त्रेण चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम्। आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदनः संपद्यते। इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धनं पर्याप्तमिति

मानोन्मानपूर्वकं देयम् । उत्थितेन च राज्ञा क्षालिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्नः प्रथमेऽष्टमे वा भागे श्रोतव्यम् । शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्ताश्चत्वारिंशतं चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्ध्यैव ते विकल्पयितारः ।

संस्कृत व्याख्या—सः—पटुजातीयः·····राजविद्याः—राज्ञां शिक्षणीयाः विद्याः शास्त्राणि, त्रयी—वेदः, वार्ता—कृष्यादिशास्त्रम्, आन्वीक्षिकी—न्यायशास्त्रम्, दण्डनीतिः—अर्थशास्त्रं नयानयनिरूपकशास्त्रमिति यावत् । तासु—विद्यासु···महत्यः—विस्तीर्णाः, मन्दफलाश्च—अल्पप्रयोजनाश्च···आसतां—तिष्ठन्तु । ···इयं—दण्डनीतिः, आचार्यविष्णुगुप्तेन—चाणक्येन, मौर्यार्थे—चन्द्रगुप्तकृते,··संक्षिप्ता—संक्षेपेण रचिता । ···अनुष्ठीयमाना—आचर्यमाणा, यथोक्तकर्मक्षमा—पूर्वप्रतिपादितकार्यकरणसमर्था । सः, तथा—तथैवास्तु···तत्रैव—दण्डनीत्यध्ययने, जरां गच्छति—वृद्धत्वं प्राप्नोति ।··शास्त्रान्तरानुबन्धि—अन्यशास्त्रापेक्षि । सर्वमेव, वाङ्मयं—शास्त्रं···तत्त्वतः—याथातथ्येन, अधिगंस्यते—ज्ञास्यते ।···तदर्थाधिगतिः—तदर्थबोधः । अधिगतशास्त्रेण—शिक्षितशास्त्रेण, च, आदावेव—प्रथममेव, पुत्रदारमपि—पुत्राः स्त्रियोऽपि, न, विश्वास्यं—विश्वसनीयम् । आत्मकुक्षेः—स्वोदरस्य, अपि कृते—निमित्तम्, इयद्भिः—इयत्परिमाणैः, तण्डुलैः, इयान्—इयत्परिमाणः, ओदनः भक्तम्,···इयतः—इयत्परिमाणस्य,···एतावत्—एतत्परिमाणम्, इन्धनं—काष्ठम्,··मानोन्मानपूर्वकं—मानः प्रस्थादिकृतः उन्मानं तुलादण्डकृतः तत्पूर्वकम्,··उत्थितेन—शयनादिति शेषः, राज्ञा, क्षालिताक्षालिते—(कार्यत्वरया) धौते अधौते वा, मुखे, मुष्टिम् अर्धमुष्टिं वा—परिमाणविशेषौ, अभ्यन्तरीकृत्य—निःक्षिप्य गिलित्वेति भावः, कृत्स्नं—समग्रम्,···शृण्वत एव—आकर्णयत एव,··अध्यक्षधूर्ताः—धूर्ताः अधिकारिणः,··आहरणोपायान्—संग्रहोपायान्, आत्मबुद्ध्यैव—स्वबुद्धिबलेनैव, ते, विकल्पयितारः—व्यवस्थापयितारः ।

हिन्दी अनुवाद—वह फिर उनसे कहता है—'वह कौन-सा मार्ग है?' फिर वे कहते हैं—'निश्चित रूप से राज-विद्यायें चार हैं—त्रयी (वेद), वार्ता (कृषि या गुप्तचर सम्बन्धी शास्त्र), आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति या अर्थशास्त्र) । उनमें से तीन—त्रयी, वार्ता और आन्वीक्षिकी

विशाल हैं और मन्द फल वाली हैं। अतएव तब तक उन्हें रहने दीजिए। पहले दण्डनीति (राजनीति) का अध्ययन कीजिए। इस (दण्डनीति) को आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने चन्द्रगुप्त के लिए छह हजार श्लोकों में संक्षिप्त (करके विरचित) किया है। वही यह (दण्डनीति) भली भाँति व्यवहार में लायी जाने पर उर्युक्त फल देने में समर्थ होगी।'

वह (धनी व्यक्ति) 'अच्छी बात है' कह कर अध्ययन करने लगता है और श्रवण करता है। उसी में वृद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है और वह शास्त्र दूसरे शास्त्रों से सम्बन्धित है। (अतएव) सकल वाङ्मय को बिना समझे वह यथार्थतः समझ में नहीं आता है। अथवा अधिक समय या थोड़े समय में (ही) उसके अर्थ का बोध (भी) हो जाय; फिर भी (उस) शास्त्र के अध्येता के लिए पहले ही पुत्र और स्त्री भी विश्वसनीय नहीं होती। अपने पेट के लिए भी इतने चावल से इतना भात तैयार होता है, इतना भात पकाने के लिए इतनी लकड़ी पर्याप्त है, इस प्रकार तौल-नापकर (रसोइए को) देना चाहिए (ऐसा वह करने लगता है)। (शय्या पर से) उठते ही (कुछ) धुले और (कुछ) न धुले मुँह में एक मुट्ठी या आधी मुट्ठी (भर अन्न) भीतर करके सम्पूर्ण आय-व्यय को दिन के पहले या आठवें भाग में सुनना चाहिए (ऐसा वह करता है)। उसके सुनते ही (सुनते), चाणक्य के बताये हुए चोरी के चालीस उपायों को अपनी बुद्धि से हजारों प्रकार के बना लेने वाले वे धूर्त अधिकारी दूना (धन) चुरा लेते हैं।

टिप्पणी—इमान् प्रति—यहाँ 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इस वार्तिक से द्वितीया हुई। **राजविद्याः**—राजाओं की विद्यायें। राज्ञां विद्याः राजविद्याः (ष० त०)। **त्रयी**—तीनों वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। **वार्ता**—कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि विषयक शास्त्र। **आन्वीक्षिकी**—आत्मविज्ञान, न्याय या दर्शनशास्त्र। **दण्डनीति**—राजनीति, अर्थशास्त्र। मनु ने कहा है—'आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ। अर्थानर्थौ च वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ॥' **मन्दफलाः**—जिनका फल या प्रयोजन कम हो। मन्दं फलं यासां ताः (ब० स०)। **आसताम्**—रहें। √आस्+लोट्—झ। **मौर्यार्थे**—चन्द्रगुप्त के वास्ते। मुरायाः एतन्नाम्न्याः दास्याः अपत्यं पुमान्

मौर्यः मुरा+ण्य। मौर्याय इति मौर्यार्थे 'अर्थेन नित्यसमासो विभक्त्यलोपश्च' इत्यनेन (च० त०)। **संक्षिप्ता**—संक्षेप कर दी गई। सम्√क्षिप्+क्त+टाप्। **अधीत्य**—पढ़कर। अधि√इ+क्त्वा—ल्यप्। **अनुष्ठीयमाना**—व्यवहार में लायी जाती हुई। अनु√स्था+कर्मणि लट्—शानच्, यक्, मुक्, टाप्। **यथोक्तकर्मक्षमा**—उपर्युक्त या उचित फल देने में समर्थ। यथा उक्तम् (अव्य स०), यथोक्तं च तत् कर्म (कर्म० स०), तस्मिन् क्षमा (स० त०)। **जरां गच्छति**—बुढ़ापे को प्राप्त करता है। **शास्त्रान्तरानुबन्धि**—दूसरे शास्त्रों की अपेक्षा रखने वाला। अन्यानि शास्त्राणि शास्त्रान्तराणि (मयू० त० स०), शास्त्रान्तराणि अनुबध्नाति तच्छीलम् इति शास्त्रान्तर—अनु√बन्ध्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये। **वाङ्मयम्**—शास्त्र। वाच्+मयट्। **अधिगंस्यते**—समझेगा। अधि√गम्+लृट् कर्मणि। **तदर्थाधिगतिः**—उसके तात्पर्य का बोध। तस्य अर्थः, तस्य अधिगतिः (ष० त०)। **अधिगतशास्त्रेण**—जिसने शास्त्र का अध्ययन कर लिया है। अधिगतं शास्त्रं येन सः (ब० स०), तेन। **पुत्रदारम्**—पुत्र और स्त्री। पुत्राश्च दाराश्च इति एतेषां समाहारः (द्व० स०)। **विश्वास्यम्**—विश्वास करने योग्य। वि√श्वस्+ण्यत्। **आत्मकुक्षेः**—अपने पेट के। आत्मनः कुक्षिः (ष० त०), तस्य। **इयद्भिः**—इतने से। इदं परिमाणम् एषाम् इति इयन्तः इदम्+वतुप्, तैः। **ओदनः**—भात। **सम्पद्यते**—सम्पन्न होता है। **पाकाय**—पकाने के लिए। √पच्+घञ्=पाकः, तस्मै। **मानोन्मानपूर्वकम्**—नाप-तौल के साथ। मानं उन्मानं च इति मानोन्माने (द्व० स०), मानोन्माने पूर्वं यस्मिन् कर्मणि (ब० स०, कप्) तद् यथा स्यात् तथा इति मानोन्मानपूर्वकम्। यह 'देयम्' क्रिया का विशेषण है। **क्षालिताक्षालिते**—धोये या न धोये हुए। √क्षल्+णिच्+क्त=क्षालितम्। न क्षालितम् अक्षालितम् (नञ्तत्०)। क्षालितं च तत् अक्षालितम् इति क्षालिताक्षालितम् (कर्म० स०), तस्मिन्। यह 'मुखे' का विशेषण है। **अभ्यन्तरीकृत्य**—भीतर डाल कर अर्थात् खाकर। अभ्यन्तर+च्वि, ईत्व√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **आयव्ययजातम्**—आमदनी-खर्च के समूह को। आयश्च व्ययश्च इति आयव्ययौ (द्व० स०), तयोः जातं समूहः (ष० त०)। **अह्नः**—दिन के। **शृण्वतः**—सुनते हुए। अत्र अनादरे षष्ठी। शृण्वन्तं तमनादृत्येत्यर्थः। **चाणक्योपदिष्टान्**—चाणक्य के बताये हुए। चाणक्येन उपदिष्टाः

(तृ० त०), तान्। **विकल्पयितारः**—रच लेंगे। वि√क्लृप् (कल्प्)+लुट्। यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से वर्तमान के अर्थ में लुट् लकार हुआ है।

द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां जनानामाक्रोशाद्दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति। तत्रापि प्राड्विवाकादयः स्वेच्छया जयपराजयौ विदधानाः, पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनश्चार्थैर्योजयन्ति। तृतीये स्नातुं भोक्तुं च लभते। भुक्तस्य यावदन्धः परिणामस्तावदस्य विषभयं न शाम्यत्येव। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्तं प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति। पञ्चमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति। तत्रापि मन्त्रिणो मध्यस्था इवान्योन्यं संभूय, दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यतां देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया विपरिवर्तयन्तः स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति। बाह्याभ्यन्तरांश्च कोपान्गूढमुत्पाद्य प्रकाशं प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशमवगृह्णन्ति। षष्ठे स्वैरविहारो मन्त्रो वा सेव्यः। सोऽस्यैतावान् स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिकाः। सप्तमे चतुरङ्गबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः। अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेशः।

संस्कृत व्याख्या—द्वितीये—दिवसस्य द्वितीयभागे, अन्योन्यं—परस्परं, विवदमानानां—कलहं कुर्वाणानां, जनानाम्, आक्रोशात्—चीत्कारशब्दात्, दह्यमानकर्णः—सन्तप्यमानश्रवणः, कष्टं जीवति। तत्रापि, प्राड्विवाकादयः—व्यवहारद्रष्ट्रादयः,···विदधानाः—घटयन्तः,···भर्तारं—स्वामिनम्, आत्मनः—स्वान्, अर्थैः—धनैः, योजयन्ति—सङ्गमयन्ति। तृतीये—तृतीयभागे,···अन्धः परिणामः—अन्धसः अन्नस्य परिणामः परिपाकः,···हिरण्यप्रतिग्रहाय—सुवर्णग्रहणाय,···मन्त्रचिन्तया—अमात्यैः सह मन्त्रणायाम्, आयासं—क्लेशम्,··मध्यस्थाः—उदासीनाः,··संभूय—मिलित्वा, ·····दूतचारवाक्यानि—दूताः सन्देशहराः चाराः गूढपुरुषाः तेषां वाक्यानि वचनानि,····विपरिवर्तयन्तः—विपर्यासयन्तः, स्वपरमित्रमण्डलानि—स्वमंडलं परमंडलं मित्रमंडलञ्चेत्यर्थः, उपजीवन्ति—आश्रयन्ते। बाह्याभ्यन्तरांश्च—बाह्यान् प्रजाः आभ्यन्तरान् अमात्यादींश्च, कोपान्—क्रोधान्, गूढम्—गुप्तरूपेण,····प्रशमयन्तः—शान्ति प्रापयन्तः,··अवगृह्णन्ति—वशीकुर्वन्ति।···स्वैरविहारः—स्वच्छन्दविहरणम्, ···त्रिपादोत्तराः—त्रिपादाधिकाः, नाडिकाः—

घटिकाः ।.....चतुरङ्गबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः—चतुरङ्गबलस्य हस्त्यश्वरथपदातिलक्षणस्य प्रत्यवेक्षणं परीक्षणं तस्य प्रयासः क्लेशः।.....सेनापतिसखस्य—सैन्याध्यक्षेण सहेत्यर्थः, विक्रमचिन्ताक्लेशः—पराक्रमचिन्तनकष्टम्।

हिन्दी अनुवाद—दूसरे पहर में, परस्पर झगड़ते हुए जनसमुदाय के स्पर्धा-भरे वचनों (गाली-गलौज) से पकते हुए कानों वाला वह राजा कष्ट से जीता है। वहाँ भी न्यायकर्ता लोग अपनी इच्छा से जय और पराजय (का निर्णय) करते हुए स्वामी को पाप तथा अपयश से और अपने को धन से युक्त कर लेते हैं (अर्थात् स्वामी को बदनाम करके अपनी जेबें भरते हैं)। तीसरे पहर में, वह स्नान और भोजन कर पाता है। भोजन कर लेने पर जब तक अन्न पच नहीं जाता है तब तक उसका विष-भय शान्त नहीं होता (अर्थात् भोजन हजम होने तक उसके मन में यह भय बना रहता है कि कहीं किसी ने भोजन में विष तो नहीं दे दिया)। चौथे पहर में, सोना (अर्थात् राज-कर) लेने के लिए वह हाथ फैलाये हुए ही उठता है। पाँचवें पहर में, (मंत्रियों के साथ) मंत्रणा करने की चिन्ता से महान् क्लेश का अनुभव करता है। वहाँ भी मंत्री लोग मध्यस्थों के समान, आपस में मिलकर दोष और गुण, दूतों तथा गुप्तचरों की बात, साध्यता और असाध्यता एवं देश, काल तथा कार्य की अवस्था में स्वेच्छानुसार परिवर्तन करते हुए अपने मंडल, शत्रु के मंडल और मित्र के मंडल का आश्रय लेते हैं (अर्थात् उनसे भी धन ग्रहण करते हैं)। बाहरी तथा भीतरी क्रोधों (झगड़े की बातों) को गुप्त रूप से भड़काकर प्रकट रूप से शान्त करते हुए की तरह, स्वामी को विवश बनाकर मुट्ठी में कर लेते हैं। छठे पहर में (उसे) स्वच्छन्द विहार या मन्त्रणा करनी चाहिए। सो उसके स्वच्छन्द विहार का समय पौने चार दण्ड ही होता है। सातवें पहर में, (हाथी, घोड़े, रथ पैदल रूप) चतुरङ्गिणी सेना के निरीक्षण का कष्ट उठाना पड़ता है। आठवें पहर में सेनापति के साथ पराक्रम की चिन्ता का क्लेश भोगना पड़ता है।

टिप्पणी—**अन्योन्यम्**—परस्पर, आपस में। अन्य+कर्मव्यतिहारे द्वित्वम् पूर्वपदे सुश्च। **विवदमानानाम्**—विवाद करते हुए। वि√वद्+शानच्=विवदमानाः, तेषाम्। **आक्रोशात्**—चिल्लाहट, शोरगुल, गालीगलौज से। **दह्यमानकर्णः**—जिसके कान जल रहे हों। दह्यमानौ कर्णौ यस्य सः (ब० स०)।

प्राड्विवाकादयः—विचारपति, न्यायाधीश आदि। पृच्छतीति प्राट्√प्रच्छ+क्विप्, दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च, विविनक्तीति विवाक् वि√वच्+क्विप् आदि। प्राट् चासौ विवाकः प्राड्विवाकः (कर्म० स०), सः आदौ येषां ते (ब० स०)। **विदधानाः**—करते हुए। वि√धा+शानच्। **पापेनाकीर्त्या च**—पाप और बदनामी से। क्योंकि मनु ने कहा है—'अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ।। **अर्थैर्योजयन्ति**—धन से जोड़ते हैं अर्थात् धन कमाते हैं। **भुक्तस्य**—भोजन कर चुके हुए। यह 'अस्य' का विशेषण है।√भुज्+क्त=भुक्तम्=भोजनम्। तत् अस्ति अस्य इति भुक्तः भुक्त+अच् अर्शआदित्वात्, तस्य। **अन्धः परिणामः**—अन्न का परिपाक, भोजन हजम होना। अन्धसः परिणामः अन्धः परिणामः (ष० त०)। **विषभयम्**—विष की आशंका। कामन्दक नीतिशास्त्र में कहा गया है—'याने शय्यासने पाने भोज्ये वस्त्रे विभूषणे। सर्वत्रैवाप्रमत्तः स्याद् वर्जयेद् विषदूषितम्'।। **हिरण्यप्रतिग्रहाय**—सोना लेने अर्थात् प्रजाओं से करके रूप में रुपये-पैसे लेने के लिए। प्रति√ग्रह्+अप् =प्रतिग्रहः=ग्रहणम्, हिरण्यस्य प्रतिग्रहः, तस्मै। **प्रसारयन्**—फैलाते हुए। प्र√सृ+णिच्+शतृ। **मन्त्रचिन्तया**—मन्त्रणा (राय-मशविरा) की चिन्ता से। मन्त्रस्य चिन्ता (ष० त०)। तया। **आयासम्**—कष्ट, परेशानी को। **मध्यस्था इव**—उदासीन, निष्पक्ष की तरह। मध्ये तिष्ठन्ति मध्यस्थाः मध्य√स्था+क। **सम्भूय**—मिलकर। सम्√भू+क्त्वा—ल्यप्। **दूतचारवाक्यानि**—दूतों और गुप्तचरों की बातों को। चर एव चारः चर+अण् स्वार्थे। दूताश्च चाराश्च इति दूतचाराः (द्व० स०), तेषां वाक्यानि (ष० त०)। **शक्याशक्यताम्**—हो सकने तथा न हो सकने की योग्यता को। शक्यं च अशक्यं च इति शक्याशक्ये (द्व० स०), तयोः भावः शक्याशक्यता शक्याशक्य+तल्+टाप्, ताम्। **देशकालकार्यावस्थाः**—देश, काल और कार्य की अवस्थाओं को। देशश्च कालश्च कार्याणि च इति देशकालकार्याणि (द्व०स०), तेषाम् अवस्थाः (ष० त०), ताः। **विपरिवर्तयन्तः**—उलटते हुए। वि-परि√वृत्+णिच्+शतृ। **स्वपरमित्रमण्डलानि**—अपनी मण्डली, शत्रु की मण्डली और मित्र की मण्डली को। स्वे (आत्मीयाः) च, परे (शत्रवः) च मित्राणि च (द्व० स०), तेषां मण्डलानि। यहाँ 'द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते'

इस नियम से मण्डल शब्द का सम्बन्ध स्व, पर और मित्र तीनों से है। **बाह्याभ्यन्तरान्**—बाहरी और भीतरी। बहिः भवाः बाह्याः बहिस्+ष्यन्। अभ्यन्तरे भवाः आभ्यन्तराः अभ्यन्तर+अण्। बाह्याश्च आभ्यन्तराश्च इति बाह्याभ्यन्तराः (द्व० स०), तान्। यहाँ शत्रुकृत कोप या झगड़े को बाह्य तथा अपनी प्रजा आदि कृत कोप को आभ्यन्तर कहा है। **गूढम्**—छिपे तौर से। **प्रकाशम्**—प्रकट रूप से। ये दोनों क्रियाविशेषण हैं। **अवगृह्णन्ति**—वशीभूत कर लेते हैं। **स्वैरविहारः**—स्वेच्छापूर्वक विहार या आमोद-प्रमोद। स्वैरं यथा स्यात् तथा विहारः (सुप्सुपा स०)। **तिस्रः त्रिपादोत्तरा नाडिकाः**—तीन चरण अधिक तीन घड़ियाँ अर्थात् ४५ पल अधिक तीन दण्ड। त्रयः पादा उत्तरे यासां तादृश्यः (ब० स०)। **चतुरङ्गबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः**—चतुरंगिणी सेना पर निगाह रखने का कष्ट। चत्वारि अङ्गानि विद्यन्ते यस्मिन् तत् चतुरङ्गम् (ब० स०), चतुरङ्गं च तद्बलम् चतुरङ्गबलम् (कर्म० स०), तस्य प्रत्यवेक्षणम् (ष० त०), तस्य प्रयासः। सेना के चार अंग ये हैं—गजसेना, अश्वसेना रथसेना और पदाति (पैदल) सेना। **सेनापतिसखस्य**—सेनापति का मित्र बनकर अर्थात् सेनापति के साथ। सेनायाः पतिः, तस्य सखा इति सेनापतिसखः (ष० त०), 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इत्यनेन समासान्तटच्प्रत्ययः। **विक्रमचिन्ताक्लेशः**—पराक्रम (दिखाने) की चिन्ता जन्य क्लेश। विक्रमस्य चिन्ता (ष० त०), तज्जन्यः क्लेशः (मध्य० स०)।

पुनरुपास्यैव सन्ध्याम्, प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्याः। तन्मुखेन चातिनृशंसाः शस्त्राग्निरसप्रणिधयोऽनुष्ठेयाः। द्वितीये भोजनानन्तरं श्रोत्रिय इव स्वाध्यायमारभेत। तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत किल। कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत्? पुनः षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भः। सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च। दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानलब्धान् अर्थान् वीतशुल्कबाधवर्त्मनि वणिज्यया वर्धयन्तः, कार्यमविद्यमानमपि लेशेनोत्पाद्यानवरतं भ्रमन्ति। अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहुः—'अद्य दृष्टो दुःस्वप्नः। दुःस्था ग्रहाः शकुनानि चाशुभानि। शान्तयः क्रियन्ताम्। सर्वमस्तु सौवर्णमेव होमसाधनम्। एवं सति कर्म गुणवद्भवति। ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणाः। कृतमेभिः स्वस्त्ययनं कल्याणतरं भवति। ते

चामी कष्टदारिद्रचा बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहाः। दत्तं चैभ्यः स्वर्ग्यमायुष्यमरिष्टनाशनं च भवति, इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपांशु भक्षयन्ति। तदेवमहर्निशमविहितसुखलेशमायासबहुलमविरलकदर्थनं च नयतो नयज्ञस्यास्तां चक्रवर्तिता स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्यं भवेत्। शास्त्रज्ञसमज्ञातो हि यद्ददाति, यन्मानयति, यत्प्रियं ब्रवीति, तत्सर्वमभिसन्धातुमित्यविश्वासः। अविश्वास्यता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः। यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोकत एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थः। स्तनन्धयोऽपि हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्सते। तदपास्यातियन्त्रणामनुभूयन्तां यथेष्टमिन्द्रियसुखानि।

संस्कृत व्याख्या—पुनः, उपास्यैव सन्ध्याम्—सन्ध्योपासनं कृत्वा···' गूढपुरुषाः—गुप्तचराः···अतिनृशंसाः—अतिक्रूराः, शस्त्राग्निरसप्रणिधयः गुप्तदूताः,···श्रोत्रिय इव—वैदिक इव, स्वाध्यायं—वेदाध्ययनम्····· तूर्यघोषेण—नृपस्य शयनसमयसूचकेन वाद्यध्वनिना, संविष्टः—शयितः,···· अजस्रचिन्तायासविह्वलमनसः—निरन्तरचिन्ताक्लेशव्याकुलितचेतसः, वराकस्य—तपस्विनः अनुकम्पार्हस्य वा, निद्रासुखम्, उपनमेत्—उपतिष्ठेत्। पुनः षष्ठे—रात्रेः षष्ठभागे,··मन्त्रग्रहः—मन्त्रणाग्रहणम्,····नाम—कुत्सायाम्, उभयत्र—येन प्रेषितो यदन्तिकं प्रेषितश्च, प्रियाख्यानलब्धान्—प्रियवचनप्राप्तान्, अर्थान्—धनानि, वीतशुल्कबाधवर्त्मनि—वीता अपगता शुल्कस्य राजदेयस्य करविशेषस्य बाधा पीडनं यत्र तादृशे वर्त्मनि मार्गे,···लेशेन—कपटेन····· दुःस्थाः—मन्दस्थानगताः, ग्रहाः—सूर्यादयः, शकुनानि—शुभाशुभसूचकलक्षणानि, ····होमसाधनं—हवनसामग्री, एवं सति—सौवर्णे होमसाधने सतीत्यर्थः, कर्म—यज्ञादि, गुणवत्—सफलम्,·····ब्रह्मकल्पाः—हिरण्यगर्भतुल्याः,···· स्वस्त्ययनं—शान्त्यादिकम्,···कष्टदारिद्रयाः—कष्टं क्लेशकरं दारिद्र्यं येषां तादृशाः, बह्वपत्याः—बहूनि अपत्यानि सन्तानानि येषां तादृशाः, यज्वानः—यथाविधि यज्ञानुष्ठातारः, 'वीर्यवन्तः—तेजस्विनः,·····अप्राप्तप्रतिग्रहाः—अलब्धदानाः····स्वर्ग्यं—स्वर्गसाधनम्, आयुष्यम्—आयुर्वृद्धिकरम्, अरिष्टनाशनम्—अशुभशान्तिकरम्,···तन्मुखेन—तद्द्वारेण, स्वयम्, उपांशु—गूढमिति यावत्,····अविहितसुखलेशं—सुखलेशवर्जितमित्यर्थः····अविरलकदर्थनम्—

अनवरतक्लेशं यथा तथा, नयतः—जीवनं यापयतः, नयज्ञस्य—नीतिज्ञस्य, आस्तां —तिष्ठतु, चक्रवर्तिता—साम्राज्यं,······दुरारक्ष्यं—दुःखेन आरक्षणीयम्, ····। शास्त्रज्ञसमज्ञातः—नीतिशास्त्रज्ञोऽयमिति या समज्ञा कीर्तिस्तस्याः···· अभिसन्धातुं—प्रवञ्चयितुम्, ···यावता—यत्परिमाणेन, ···अर्थः—प्रयोजनम्। स्तनन्धयः—स्तन्यपायी शिशुरित्यर्थः···लिप्सते—लब्धुमिच्छति, तत् —तस्मात्, अतियन्त्रणाम् अत्यर्थनिपीडनं नीतिशास्त्रस्येति शेषः, अपास्य—दूरीकृत्य, यथेष्टं—यथेच्छम्।

हिन्दी अनुवाद—फिर सन्ध्यावन्दन करके रात्रि के प्रथम प्रहर में ही गुप्तचरों से मिलना होता है। उनके द्वारा अत्यन्त क्रूर तथा शस्त्र, अग्नि और विष का प्रयोग करने वाले गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति करनी पड़ती है। दूसरे पहर में भोजन कर चुकने के बाद वेदपाठी की तरह वह स्वाध्याय प्रारंभ करे। तीसरे पहर में (राजशयनसूचक) वाद्यध्वनि से सोया हुआ वह राजा चौथे और पाँचवें पहर तक शयन करे। नित्य चिन्ता के क्लेश से व्याकुल चित्त वाले बेचारे को निद्रा-सुख कैसे मिले? फिर छठे पहर में शास्त्र की चिन्ता और कार्य की चिन्ता आरंभ हो जाती है। सातवें पहर में मन्त्रणा ग्रहण करना और दूतों को भेजना पड़ता है। दूत तो दोनों जगह (अर्थात् जो भेजता है और जिसके पास भेजा जाता है उन दोनों के यहाँ) प्रिय वचनों द्वारा पाये हुए धन को राजकर की बाधा से रहित मार्ग में व्यापार द्वारा बढ़ाते हुए कार्य न रहने पर भी छल से उत्पन्न करके निरन्तर घूमते रहते हैं। आठवें पहर में पुरोहित आदि (राजा के) पास आकर कहते हैं—'आज बुरा स्वप्न देखा है। ग्रह खराब स्थानों में पड़े हैं और अशुभ शकुन हुए हैं। शान्ति की जानी चाहिए। हवन की सारी सामग्रियाँ सोने की हों। ऐसा होने पर कर्म (यज्ञ आदि) सार्थक होता है। ये ब्राह्मण ब्रह्मा के तुल्य हैं। इनके द्वारा किया हुआ स्वस्त्ययन (शान्ति-विधि) अधिक कल्याणकारक होगा। ये दरिद्रता से पीड़ित और बहुत सन्तान वाले याज्ञिक तेजस्वी तथा आज भी अपरिग्रही (दान न लिये हुए) हैं। इनको दिया हुआ दान स्वर्गदायक आयु-वर्धक और अशुभनाशक है।' इस प्रकार (कहकर) बहुत-बहुत (धन) दिलाकर उनके द्वारा स्वयं चुपचाप खा जाते हैं। सो इस प्रकार दिनरात लेशमात्र भी सुख से रहित कष्टों से परिपूर्ण और सतत क्लेश (या निन्दा) से युक्त जीवन-यापन

करते हुए राजनीतिज्ञ राजा का चक्रवर्ती होना तो दूर रहा, अपने राज्य की रक्षा करना भी दूभर हो जाता है। शास्त्रज्ञाता को प्रसिद्धि हो जाने के कारण वह जो देता है, जो सम्मान करता है और जो प्रिय बोलता है वह सब ठगने के लिए (करता) है, यह अविश्वास (लोगों में) हो जाता है। अविश्वास का होना ही दरिद्रता की जन्मभूमि है। जितनी नीति के बिना लोकयात्रा (जीवन-निर्वाह) नहीं हो सकती उतनी नीति तो लोक-व्यवहार से प्राप्त हो जाती है; उसके लिए शास्त्र (पढ़ने) की आवश्यकता नहीं है (दुधमुँहा बच्चा भी उन-उन उपायों से (अर्थात् किसी न किसी उपाय से) माता का स्तन-पान करने (दूध पीने) की इच्छा करता है। इसलिए (नीतिशास्त्र की) महती यन्त्रणा को दूरकर इन्द्रिय-सुखों का यथेच्छ उपभोग कीजिए।

टिप्पणी—गूढपुरुषाः—गुप्तचर। गूढाश्च ते पुरुषाः गूढपुरुषाः (कर्म० स०)। **अतिनृशंसाः**—अत्यन्त क्रूर। **शस्त्राग्निरसप्रणिधयः**—शस्त्र से मारने वाले, अग्नि द्वारा मारने वाले और विष द्वारा मारने वाले गुप्त दूत। शस्त्रं च अग्निश्च रसश्च इति शस्त्राग्निरसाः (द्व० स०), तेषु दक्षाः प्रणिधयः इति शस्त्राग्निरसप्रणिधयः (मध्य० स०)। **अनुष्ठेयाः**—नियुक्त करने चाहिए। अनु √स्था+यत्। **श्रोत्रियः**—वेदाध्यायी। श्रोत्रमधीते इति श्रोत्रियः श्रोत्र+घ—इय। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैः द्विज उच्यते। वेदाध्यायी भवेद् विप्रः त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते'॥ **स्वाध्यायम्**—वेदादि शास्त्रों का अध्ययन या चिन्तन। **तूर्यघोषेण**—बाजे के शब्द से। प्राचीन काल में राजा को शयन-काल सूचित करने के लिए बाजे बजाये जाते थे। **संविष्टः**—सोया हुआ। सम्√विश्+क्त। 'संवेशः शयने स्थाने सत्समारोहणेऽपि च' इत्यजयः। **अजस्रचिन्तायासविह्वलमनसः**—निरन्तर बनी रहने वाली चिन्ता के क्लेश से व्याकुल मन वाले। अजस्रं चिन्ता इति अजस्रचिन्ता (सुप्सुपास०), अजस्रचिन्तायाः आयासः (ष० त०), तेन विह्वलं मनो यस्य स अजस्रचिन्तायासविह्वलमनाः, तस्य। **वराकस्य**—बेचारे का। √वृ+ षाकन् 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्' इत्यनेन =वराकः, तस्य। **मन्त्रग्रहः**—मन्त्रणा या राय-मशविरा लेना। मन्त्रस्य ग्रहः मन्त्रग्रहः (ष० त०)। **दूताभिप्रेषणानि**—दूतों को भेजना। दूतानाम् अभिप्रेषणानि इति दूताभिप्रेषणानि (ष० त०)। **प्रियाख्यानलब्धान्**—प्रिय वचन बोलने

से प्राप्त। प्रियं च तत् आख्यानम् इति प्रियाख्यानम् (कर्म० स०), तेन लब्धाः (तृ० त०), तान्। **वीतशुल्कबाधवर्त्मनि**—हट गई है राज-कर की बाधा या झंझट जिस मार्ग से उसमें। शुल्कस्य बाधा (ष० त०), वीता शुल्कबाधा यस्मिन् तत् वीतशुल्कबाधम् (ब० स०), वीतशुल्कबाधं च तत् वर्त्म इति वीतशुल्कबाधवर्त्म (कर्म० स०), तस्मिन्। **वणिज्यया**—व्यापार से। वणिजो भावः कर्म वा वणिज्या वणिज्+यत्+टाप्, तया। **अनवरतम्**—सतत। **अभ्येत्य**—समीप जाकर। अभि-आ√इ+क्त्वा—ल्यप्। **दुःस्वप्नः**—बुरा सपना। दुष्टः स्वप्नः दुःस्वप्नः (प्रा० स०)।√स्वप्+नन्=स्वप्नः। **सौवर्णम्**—सोने का बना हुआ। सुवर्णस्य विकारः सौवर्णम् सुवर्ण+अण्। **ब्रह्मकल्पाः**—ब्रह्मा के समान। ब्रह्मणः ईषत् न्यूनाः इति ब्रह्मकल्पाः ब्रह्मन्+कल्पप् 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इत्यनेन। **स्वस्त्ययनम्**—मंगलपाठ, शान्तिकर्म। स्वस्ति धर्मद्वारा अभिप्रेतार्थसिद्धिः, तस्य अयनम् प्रापकम् (ष० त०)। **कष्टदारिद्र्याः**—कष्टकर दरिद्रता से युक्त। कष्टं दारिद्र्यं येषां ते (ब० स०)। **यज्वानः**—यज्ञ करने वाले। विधिना इष्टवन्तः इति यज्वानः√यज्+ङ्वनिप्। **अप्राप्तप्रतिग्रहाः**—जिन्होंने दान न लिया हो या न पाया हो। प्राप्तः प्रतिग्रहः (दानं) यैः ते प्राप्तप्रतिग्रहाः (ब० स०), न प्राप्तप्रतिग्रहाः इति अप्राप्तप्रतिग्रहाः (न० त०)। **स्वर्ग्यम्**—स्वर्ग देने वाला। स्वर्गाय हितम् इति स्वर्ग्यम् स्वर्ग+यत्। **आयुष्यम्**—आयु के लिए हितकर। आयुषे हितम् इति आयुष्यम् आयुस्+यत्। **अरिष्टनाशनम्**—अमंगल या दुर्भाग्य का नाशक। **उपांशु**—चुपचाप या एकान्त में। **अहर्निशम्**—दिनरात। अहनि च निशि च इति अहर्निशम् (अव्य० स०) **अविहितसुखलेशम्**—जिसमें जरा भी सुख न मिले। न विहितः सुखलेशः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (न० ब०)। **आयासबहुलम्**—आयासः बहुलः यस्मिन् कर्मणि तत् (ब० स०)। **अविरलकदर्थनम्**—निरन्तर कष्ट या निन्दा हो जिसमें। अविरलं कदर्थनं यस्मिन् तत् (ब० स०)। **दुरारक्ष्यम्**—कठिनाई से रक्षा करने योग्य। दुःखेन आरक्षितुं योग्यम् इति दुरारक्ष्यम् दुर्—आ√रक्ष्+यत्। **शास्त्रज्ञसमज्ञातः**—यह शास्त्रज्ञ है ऐसी प्रसिद्धि से। शास्त्रज्ञः इति समज्ञा शास्त्रज्ञसमज्ञा (मध्य० स०), तस्याः इति पञ्चम्यास्तसिल्। **अविश्वास्यता**—विश्वास न किया जाना। वि√श्वस्+ण्यत्=विश्वास्यः न विश्वास्यः (न०

त०), तस्य भाव: अविश्वास्य+तल्+टाप्। **अलक्ष्म्या:**—दरिद्रता की। **स्तनन्धय:**—बच्चा। स्तनं धयते इति स्तनन्धय: स्तन√धे+खश्, मुम्। **लिप्सते**—पाना चाहता है। लब्धुम् इच्छति लिप्सते √लभ्+सन्+लट्। **अपास्य**—हटाकर। अप√अस्+क्त्वा—ल्यप्। **यथेष्टम्**—यथेच्छ। इष्टम् अनतिक्रम्य इति यथेष्टम् (अव्य० स०)।

येऽप्युपदिशन्ति 'एवमिन्द्रियाणि जेतव्यानि, एवमरिषड्वर्गस्त्याज्य:, सामादिरुपायवर्ग: स्वेषु परेषु चाजस्रं प्रयोज्य: सन्धिविग्रहचिन्तयैव नेय: काल:, स्वल्पोऽपि सुखस्यावकाशो न देय:' इति, तैरप्येभिर्मन्त्रिबकैर्युष्मत्तश्चौर्याजितं धनं दासीग्रहेष्वेव भुज्यते। के चैते वराका:। येऽपि मन्त्रकर्कशास्तन्त्रकर्तार: शुक्राङ्गिरसविशालाक्षबाहुदन्तिपुत्रपराशरप्रभृतयस्तै: किमरिषड्वर्गो जित:, कृतं वा तै: शास्त्रानुष्ठानम्। तैरपि हि प्रारब्धेषु कार्येषु दृष्टे सिद्ध्यसिद्धी। पठन्तश्चापठद्भिरतिसन्धीयमाना बहव:। नन्दिवमुपपन्नं देवस्य, यदुत सर्वलोकस्य वन्द्या जाति:, अयातयामं वय:, दर्शनीयं वपु:, अपरिमाणा विभूति:। तत्सर्वं सर्वाविश्वासहेतुना सुखोपभोगप्रतिबन्धिना बहुमार्गविकल्पनात्सर्वकार्येष्वमुक्तसंशयेन तन्त्रावापेन मा कृथा वृथा।

संस्कृत व्याख्या—.....जेतव्यानि—वशीकार्याणि, अरिषड्वर्ग:—कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यरूप:,.....सामादि:—साम, दानं भेदो दण्डश्चेत्यर्थ:, उपायवर्ग:—साधनचतुष्टयं, स्वेषु, स्वराष्ट्रेषु, परेषु—परराष्ट्रेषु, अजस्रं—नित्यं, ...नेय:—अतिवाहनीय:,...मन्त्रिबकै:—बकवृत्तिचारिभिर्मन्त्रिभि:,....दासीगृहेषु—वेश्यालयेषु,....एते—उपदेशका: के—उपदेष्टुं नाधिकारिण इत्यर्थ:, ...मन्त्रकर्कशा:—नीतिकठोरा:, तन्त्रकर्तार:—नीतिशास्त्रप्रणेतार: शुक्राङ्गिरस०—शुक्र: शुक्राचार्य: आङ्गिरसो बृहस्पति: विशालाक्ष: तन्नामधेयो नीतिशास्त्रकार: शिवो वा बाहुदन्तिपुत्रोऽपि पराशर: पराशरनीतिकार: इत्यादय:,...सिद्ध्यसिद्धी—क्वचित् सिद्धि:, क्वचिच्चासिद्धि:,.....अभिसन्धीयमाना:—प्रतार्यमाणा:,.....उपपन्नं—सङ्गतं, देवस्य—भवत:,..... अयातयामं—नवं, वय:—अवस्था, ...वपु:—शरीरं, दर्शनीयम्—मनोहरम्, ...सुखोपभोगप्रतिबन्धिना—सुखभोगविरोधिना, बहुमार्गविकल्पनात्—

नानापथविमर्शनात्, ······ अमुक्तसंशयेन—अत्यक्तसन्देहेन, तन्त्रावापेन—तन्त्रः स्वराष्ट्रचिन्ता आवापः परराष्ट्रचिन्ता तयोः समाहारः तेन।

हिन्दी अनुवाद—जो लोग भी उपदेश देते हैं कि इस प्रकार इन्द्रियों को जीतना चाहिए, इस प्रकार काम आदि छह शत्रुओं का त्याग करना चाहिए, साम आदि उपाय-समूह का अपने राज्य तथा शत्रु-राज्य (के लोगों) पर सतत प्रयोग करना चाहिए, सन्धि और विग्रह की चिन्ता में ही समय बिताना चाहिए और सुख को थोड़ा भी अवकाश नहीं देना चाहिए, वे भी मंत्री रूपी बगुले आपसे चोरी करके प्राप्त किये हुए धन को वेश्यालयों में ही भोगते हैं। और ये बेचारे क्या हैं? जो भी शुक्राचार्य, बृहस्पति, विशालाक्ष, बाहुदन्ति-पुत्र, पराशर आदि नीति-कठोर शास्त्रकार हुए हैं, क्या उन लोगों ने छह शत्रुओं को जीत लिया था? क्या उन लोगों ने शास्त्रानुसार आचरण किया था? उन्हें भी प्रारंभ किये हुए कार्यों में सफलता और असफलता मिली थी। बहुत से (नीतिशास्त्र के) पढ़ने वाले लोग भी अनपढ़ लोगों द्वारा ठग लिये जाते हैं। यह तो महाराज को प्राप्त ही है कि सारे संसार की वन्दनीय जाति, नवीन अवस्था, मनोहर शरीर और अपरिमित ऐश्वर्य (से आप सम्पन्न हैं)। इसलिए सब के अविश्वासों के कारण, सुख-भोग के विरोधी और अनेक मार्गों में तर्क-वितर्क करने के कारण सन्देह-बहुल स्व-पर-राष्ट्रचिन्तन के झमेले में आप मत पड़िये।

टिप्पणी—अरिषड्वर्गः—छह शत्रुओं का समुदाय। १ काम २, क्रोध ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद और ६ मत्सर—ये मनुष्य के आभ्यन्तर शत्रु कहे जाते हैं। षण्णां वर्गः षड्वर्गः (ष० त०), अरीणां षड्वर्गः अरिषड्वर्गः (ष० त०)। **उपायवर्गः**—उपायों का समूह। 'भेदो दण्डः साम दानमित्युपायचतुष्टयम्' इत्यमरः। **अजस्रम्**—निरन्तर। **सन्धिविग्रहचिन्तया**—मेल और युद्ध की चिन्ता से। **मन्त्रिबकैः**—बगुले के समान धूर्त मन्त्रियों द्वारा। मन्त्रिणः बकाः इव इति मन्त्रिबकाः (उपमित स०)। 'कुत्सितानि कुत्सितैः' इत्यनेन। तैः। मनु ने ऐसे व्यक्ति को 'बकवृत्तिचर' कहा है—'अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः। शठो मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिचरो द्विजः'॥ **युष्मत्तः**—आप से। युष्मद्+तसिल्। **चौर्यार्जितम्**—चोरी से कमाया हुआ। चौर्येण अर्जितम् (तृ० त०)।

 BVBSSMV

मन्त्रकर्कशाः—मन्त्रणा या नीति के पालन में बड़े कठोर। मन्त्रे कर्कशाः (स० त०)। **तन्त्रकर्तारः**—नीतिशास्त्र के रचयिता। **शुक्राङ्गिरस०**—शुक्रश्च आङ्गिरसश्च विशालाक्षश्च बाहुदन्तिपुत्रश्च पराशरश्च (द्व० स०), ते प्रभृतिः आदिः यषां ते (ब०स०)। **सिद्ध्यसिद्धी**—सफलता और असफलता। सिद्धिश्च असिद्धिश्च इति सिद्ध्यसिद्धी (द्व०स०)। **अतिसन्धीयमानाः**—ठगे जाते हुए। अति-सम्√धा+शानच् कर्मणि। **अयातयामम्**—नवीन। यामः उपभोगकालः। न यातः यामः यस्य तत् अयातयामम् (न०त०)। **सर्वाविश्वासहेतुना**—सब के अविश्वास के कारणभूत। सर्वेषाम् अविश्वासः तस्य हेतुः (ष०त०), तेन। **सुखोपभोगप्रतिबन्धिना**—सुख भोगने में अड़चन डालने वाले। सुखानाम् उपभोगः (ष० त०), तं प्रतिबघ्नाति इति सुखोपभोग-प्रति बन्ध्+णिनि, तेन। **बहुमार्गविकल्पनात्**—अनेक मार्गों की कल्पना करने के कारण। बहवः मार्गाः (कर्म० स०), तेषां विकल्पनम् (ष० त०), तस्मात्। **अमुक्तसंशयेन**—जिसमें संदेह को छोड़ा नहीं जा सकता अर्थात् सन्देहप्रधान। न मुक्तः संशयः यस्मिन् (न० ब०), तेन। **तन्त्रावापेन**—अपने और दूसरे के राष्ट्र की चिन्ता। तन्त्रः स्वराष्ट्रचिन्तायामावापः परचिन्तने इति कोषः। तन्त्रश्च आवापश्च इति तन्त्रावापम् समाहारे (द्व०स०), तेन नपुंसकत्वम्। तेन। **मा कृथाः**—मत कीजिए। यहाँ 'अकृथाः' में 'न माङ्योगे' सूत्र से अडागम का निषेध हुआ है।

सन्ति हि ते दन्तिनां दश सहस्राणि, हयानां लक्षत्रयम्, अनन्तं च पादातम्। अपि च पूर्णान्येव हेमरत्नैः कोशगृहाणि। सर्वश्चैष जीवलोकः समग्रमपि युगसहस्रं भुञ्जानो न ते कोष्ठागाराणि रेचयिष्यति। किमिदमपर्याप्तं यदन्यार्जितायासः क्रियते। जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुः पञ्चाप्यहानि। तत्रापि भोगयोग्यमल्पाल्पं वयः खण्डम्। अपण्डिताः पुनरर्जयन्त एव ध्वंसन्ते। नार्जितस्य वस्तुनो लवमप्यास्वादयितुमीहन्ते। किं बहुना, राज्यभारं भारक्षमेष्वन्तरङ्गेषु भाक्तमत्सु समर्प्य अप्सरः प्रतिरूपाभिरन्तः पुरिकाभी रममाणो गीतसंगीतपानगोष्ठीश्च यथर्तु बध्नन् यथार्हं कुरु शरीरलाभम्' इति पञ्चाङ्गीस्पृष्टभूमिरञ्जलिचुम्बितचूडश्चिरमशेत। प्राहसीच्च प्रीतिफुल्ललोचनोऽन्तः पुरप्रमदाजनः। जननाथश्च सस्मितम् 'उत्तिष्ठ, ननु हितोपदेशाद् गुरवो भवन्तः। किमिति गुरुत्वविपरीतमनुष्ठितम्' इति तमुत्थाप्य क्रीडानिर्भर-

712

BVBSBMV

मतिष्ठत्। अथैषु दिनेषु भूयोभूयः प्रस्तुतेऽर्थे प्रेर्यमाणो मन्त्रिवृद्धेन, वचसाभ्युपेत्य मनसैवाचित्तज्ञ इत्यवज्ञातवान्।

संस्कृत व्याख्या—·····दन्तिनां—गजानां, ·····हयानाम्— अश्वानां, ·····पादातम्— पदातिसैन्यं, ····कोशगृहाणि—धनागाराणि, ····रेचयिष्यति—शून्यीकरिष्यति·····अपर्याप्तम्—अयथेष्टम्, अन्यार्जितायासः—अन्यार्जितं परकीयधनं तदर्थम् आयासः क्लेशः, ·····जन्मवतां—प्राणिनाम्, ····अहानि—दिनानि। ····अल्पाल्पम्—अत्यल्पम्, वयः खण्डम्—आयुर्भाग :। अपण्डिताः—मूर्खाः, अर्जयन्त एव ध्वंसन्ते—अर्जनं कुर्वन्त एव नाशमायान्ति । ·····लवमपि—लेशमपि,·····भारक्षमेषु····राज्यपालनसमर्थेषु, अन्तरङ्गेषु—अमात्यषु, अप्सरः प्रतिरूपाभिः—देवाङ्गनातुल्याभिः, अन्तःपुरिकाभिः—अन्तःपुरनिवासिनीभिः रमणीभिः····यथर्तु—ऋतुमनतिक्रम्य कालानुरूपमित्यर्थः, वघ्नन्—कुर्वन्, यथार्हं—सार्थकं, शरीरलाभं;—जन्म। पञ्चाङ्गीस्पृष्टभूमिः—जानुद्वयं बाहुद्वयं मूर्धा चेति पञ्चाङ्गानि तैः स्पृष्टा भूमिर्येन तथाभूतः, अञ्जलिचुम्बितचूडः—अञ्जलिना चुम्बिता चूडा मौलिर्येन तथाभूतः, (विहारभद्रः) चिरं—बहुक्षणम्, अशेत—प्राणमदित्यर्थः। प्रीतिफुल्ललोचनः—प्रहर्षविकसितनेत्रः। ·····जननाथः—राजा, ·····गुरुत्वविपरीतम्—दण्डवत्प्रणामकरमित्यर्थः अनुष्ठितम्—आचरितम्, ·····प्रस्तुते—प्रकृते, अर्थे—विषये····अभ्युपेत्य—स्वीकृत्य. ·····अचित्तज्ञः—आशयानभिज्ञः इति, अवज्ञातवान्—अपमानितवान्।

हिन्दी अनुवाद—आपके पास दस हजार हाथी हैं, तीन लाख घोड़े हैं और असंख्य पैदल सैनिक हैं। और भी, आपके खजाने सुवर्ण तथा रत्नों से भरे ही हैं। यह सम्पूर्ण जगत् पूरे सहस्र युगों तक खाता हुआ भी आपके खजाने को खाली नहीं कर पायेगा। क्या यह अपर्याप्त है, जो दूसरे के उपार्जित किये हुए धन के लिए प्रयास किया जाय? प्राणियों का जीवन चार-पाँच दिनों का होता है (अर्थात् जीवन क्षणभंगुर है)। उसमें भी भोग करने योग्य आयु का भाग बहुत अल्प होता है। फिर मूर्ख लोग कमाते ही (कमाते) मर जाते हैं। उपार्जित की हुई वस्तु का लेशमात्र उपभोग करना नहीं चाहते। और अधिक क्या कहूँ। आप भार वहन करने योग्य, अन्तरंग तथा स्वामि-भक्त लोगों को

राज्य का भार सौंपकर अप्सरा तुल्य, अन्तःपुर की रमणियों के साथ रमण करते हुए ऋतु के अनुकूल गाना-बजाना तथा पानगोष्ठी (मित्रमंडली के साथ मद्यपान) करते हुए जन्म को सार्थक करें।' यह कहकर विहार-भद्र पाँचों अंगों (दोनों घुटने, दोनों बाहें और मस्तक) से भूमि का स्पर्श करता हुआ, सिर पर हाथ जोड़कर बहुत देर तक लेटा रहा। हर्ष से विकसित नेत्रों वाली अन्तःपुर की महिलायें हँस पड़ीं। राजा ने मुसकराते हुए कहा—'उठिए, आप तो हित बताने के कारण (मेरे) गुरु हैं। क्यों गुरु-धर्म के विपरीत आचरण (साष्टांग प्रणाम) कर रहे हैं? ऐसा कहकर, उसे उठाकर राजा भोग-विलास में निरत हो गया। अनन्तर इन दिनों उपस्थित कार्य के सम्बन्ध में वृद्ध मंत्री द्वारा बार-बार प्रेरित होने पर भी वह वचन से स्वीकार कर मन से 'तुम आशय नहीं समझते हो' इस प्रकार (मंत्री का) अपमान करने लगा।

टिप्पणी—दन्तिनाम्—हाथियों का। प्रशस्ताः सन्ति एषाम् इति दन्त+इनि=दन्तिनः, तेषाम्। **हयानाम्**—घोड़ों का। **अनन्तम्**—अन्तरहित, असंख्य। न विद्यते अन्तः यस्य तत् अनन्तम् (न० ब०)। **पादातम्**—पैदल सिपाहियों का समूह। पादाभ्याम् अतति गच्छति इति पदातिः पद्√अत्+इन्। पदातीनां समूहः पादातम् पदाति+अण्। **हेमरत्नैः**—सोने तथा जवाहरातों से। हेमानि च रत्नानि च इति हेमरत्नानि (द्व० स०), तैः। **जीवलोकः**—संसार। जीवानां लोकः जीवलोकः (ष० त०)। **युगसहस्रम्**—सहस्र युगों तक। युगानां सहस्रम् इति युगसहस्रम् (ष० त०); 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इस सूत्र से यहाँ द्वितीया हुई है। **भुञ्जानः**—खाता हुआ। √भुज्+शानच्। **न रेचयिष्यति**—खाली नहीं करेगा। **अन्यार्जितायासः**—दूसरे के कमाये हुए धन के लिए अथवा अन्य या अधिक उपार्जन करने के लिए कष्ट करना। अन्येन अर्जितम् (तृ० त०), तदर्थम् आयासः (च० त०) अथवा√अर्ज्+क्त भावे=अर्जितम्=अर्जनम्, अन्यत् अर्जनम् (कर्म० स०), तदर्थम् आयासः। **जीवितम्**—जीवन। √जीव्+क्त भावे। **जन्मवताम्**—प्राणियों का। जन्म+मतुप्। **भारक्षमेषु**—भार वहन करने में समर्थ। भारे क्षमाः भारक्षमाः (स० त०), तेषु। **अन्तरङ्गेषु**—अत्यन्त विश्वासपात्र अर्थात् मंत्रियों पर। **अप्सरःप्रतिरूपाभिः**—अप्सराओं के समान। अप्सरसाम् इव प्रतिरूपं यासां ताः अप्सरःप्रतिरूपाः

(ब० स०), ताभिः। **अन्तःपुरिकाभिः**—अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ। अन्तः-पुर+ठन्—इक+टाप्। 'अन्तःपुरिकाभी रममाणः' में 'भिः' के विसर्ग-स्थानीय र् का 'रोरि' सूत्र से लोप हो जाने पर 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' सूत्र से दीर्घ हो गया है। **गीतसंगीतपानगोष्ठीः**—गीतं च संगीतं च पानं च इति गीतसंगीतपानानि (द्व० स०), तेषां गोष्ठ्यः (ष० त०), ताः। पान—मद्य पीना। गोष्ठी—मंडली। **यथर्तु**—ऋतु के अनुसार। ऋतुम् अनतिक्रम्य इति यथर्तु (अव्य० स०)। **यथार्हम्**—सार्थक। यथा√अर्ह्+अच्, उपपद स०। **पञ्चाङ्गीस्पृष्टभूमिः**—पाँच अंगों से भूमि का स्पर्श किये हुए। दोनों घुटने, दोनों भुजायें तथा मस्तक—ये पञ्चाङ्ग कहलाते हैं। पञ्चानाम् अङ्गानां समाहारः पञ्चाङ्गी (द्विगु० स०), ततः ङीप्। पञ्चाङ्ग्या स्पृष्टा भूमिः येन स पञ्चाङ्गीस्पृष्टभूमिः (ब० स०)। **अञ्जलिचुम्बितचूडः**—अंजलि से मस्तक को चूमे (छुये) हुए। अञ्जलिना चुम्बिता चूडा येन सः (ब० स०)। **प्रीति-फुल्ललोचनः**—हर्ष से जिसकी आँखें खिल गई हैं। प्रीत्या फुल्ले लोचने यस्य सः (ब० स०)। **अन्तःपुरप्रमदाजनः**—अन्तःपुर की स्त्रियाँ। अन्तःपुरस्थाः प्रमदाः अन्तःपुरप्रमदाः (मध्य० स०), तासां जनः समूहः (ष० त०)। **क्रीडानिर्भरम्**—क्रीडा में निरत, भोगविलासपरायण। **प्रेर्यमाणः**—प्रेरित किया जाता हुआ। प्र√ईर्+कर्मणि शानच्। **अभ्युपेत्य**—स्वीकार कर। अभि उप√इ+क्त्वा—ल्यप्। **अचित्तज्ञः**—आशय न समझने वाला। चित्तं जानाति इति चित्तज्ञः चित्त√ज्ञा+क, न चित्तज्ञः अचित्तज्ञः (न० त०)।

अथैवं मन्त्रिणो मनस्यभूत्—'अहो मे मोहाद् बालिश्यम्। अरुचितेऽर्थे चोदयन्नर्थीवाक्षिगतोऽहमस्य हास्यो जातः। स्पष्टमस्य चेष्टानामयाथापूर्व्यम्। तथा हि—न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति, न विलोभनवस्तु प्रेषयति, न मत्सुकृतानि प्रगणयति, न मे गृहवार्तां पृच्छति, न मत्पक्षान्प्रत्य-वेक्षते, न मामासन्नकार्येष्वभ्यन्तरीकरोति, न मामन्तःपुरं प्रवेशयति। अपि च मामनर्हेषु कर्मसु नियुङ्क्ते, मदासनमन्यैरवष्टभ्यमानमनुजानाति, मद्वैरिषु विश्रम्भं दर्शयति, मदुक्तस्योत्तरं न ददाति, मत्समानदोषान्विगर्हति, मर्मणि मामुपहसति, स्वमतमपि मया वर्ण्यमानं प्रतिक्षिपति, महार्हाणि वस्तूनि मत्प्रहि-

तानि नाभिनन्दति, नयज्ञानां स्खलितानि मत्समक्षं मूर्खैरुद्घोषयति। सत्यमाह चाणक्यः—'चित्तज्ञानानुवर्तिनोऽनर्था अपि प्रियाः स्युः। दक्षिणा अपि तद्भाववहिष्कृता द्वेष्या भवेयुः' इति। तथापि का गतिः। अविनीतोऽपि न परित्याज्यः पितृपैतामहैरस्मादृशैरयमधिपतिः। अपरित्यजन्तोऽपि कमुपकारमश्रूयमाणवाचः कुर्मः। सर्वथा नयज्ञस्य वसन्तभानोरश्मकेन्द्रस्य हस्ते राज्यमिदं पतितम्। अपि नामापदो भाविन्यः प्रकृतिस्थमेनमापादयेयुः। अनर्थेषु सुलभव्यलीकेषु क्वचिदुत्पन्नोऽपि द्वेषः, सद्वृत्तमस्मै न रोचयेत्। भवतु। भविता तावदनर्थः। स्तम्भितपिशुनजिह्वो यथाकथञ्चिदभ्रष्टपदस्तिष्ठेयम्' इति।

संस्कृत व्याख्या—···मोहात्—अज्ञानात्, बालिश्यं—मूर्खता। अरुचिते—अनभीष्टे, अर्थे—विषये, चोदयन्—प्रेरयन्, अर्थीव—भिक्षुरिव, अक्षिगतः—द्वेष्यः ···हास्यः—उपहसनीयः ···अयाथापूर्व्यम्—पूर्वापरवैपरीत्यम्।··· रहस्यानि—संगोपनीयानि, विवृणोति—प्रकाशयति, ···व्यसनेषु—(मम) विपत्सु, ···अनुगृह्णाति—अनुग्रहं प्रकाशयति, ···आसन्नकार्येषु—उपस्थितकर्मसु, अभ्यन्तरीकरोति—नियोजयति, ····अनर्हेषु—अयोग्येषु, ···अवष्टभ्यमानम्—आक्रम्यमाणम्, अनुजानाति—अनुमोदते, ····विश्रम्भं—विश्वासम्. ···प्रतिक्षिपति—निषेधति, महार्हाणि—बहुमूल्यानि, ··· मत्प्रहितानि—मत्प्रेषितानि, ····नयज्ञानां—नीतिविदां, स्खलितानि—दोषान्, ····चित्तज्ञानानुर्वातिनः—चित्तस्य आशयस्य ज्ञानं बोधः तत् अनुसरन्तीति तथोक्ताः आशयानुरूपमाचरन्त इत्यर्थः, अनर्थाः—दुर्जना इत्यर्थः,···दक्षिणाः—अनुकूलाः, अपि, तद्भावबहिष्कृताः—तस्य भावात् आशयात् बहिष्कृताः तदाशयानभिज्ञा इत्यर्थः. ···गतिः—उपायः, ····पितृपैतामहैः—पितृपितामहक्रमादागतैः···अश्रूयमाणवाचः—न श्रूयमाणा वाक् येषां तादृशाः, अपि नामेति संभावनायाम्, ···भाविन्यः—भविष्यन्त्यः, आपादयेयुः—कुर्युः। ···सुलभव्यलीकेषु—सुलभम् अनायाससाध्यं व्यलीकम् अपराधो येषु तथाभूतेषु, ····सद्वृत्तं—सदाचरणम् ····अनर्थः—अमङ्गलम्। स्तम्भितपिशुनजिह्वः—स्तम्भिता निश्चलीकृता पिशुना सूचिका दोषप्रकाशकारिणीति यावत् जिह्वा येन तादृशः मौनीत्यर्थ· अथवा स्तम्भिता पिशुनानां खलानां जिह्वा येन तादृशः,···अभ्रष्टपदः—अनष्टाधिकारः, तिष्ठेयम्।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर मंत्री (अपने) मन में इस प्रकार सोचने लगा—'हाय ! मोह के कारण मेरी (ऐसी) मूर्खता (हो रही है) ! अरुचिकर बातों में इस (राजा) को प्रेरित करता हुआ मैं भिक्षुक की तरह इसकी आँखों पर चढ़कर उपहास का पात्र बन गया हूँ। स्पष्ट ही (मेरे प्रति) इसके व्यवहार पूर्व की भाँति नहीं रह गए। क्योंकि (अब) यह न मुझे स्नेह से देखता है, न मुसकराकर बोलता है, न रहस्य बतलाता है, न हाथ से स्पर्श करता है, न संकट पड़ने पर दया करता है, न उत्सवों में अनुग्रह करता है, न लुभाने वाली वस्तु भेजता है, न मेरे अच्छे कार्यों को गिनता (या महत्त्व देता) है, न मेरे घर की बात पूछता है, न मेरे पक्ष के लोगों के प्रति दृष्टिपात करता है न मुझे उपस्थित कार्यों में सम्मिलित करता है और न मुझे अन्तः पुर में घुसने देता है। बल्कि मुझे अयोग्य कार्यों में लगाता है। मेरे आसन को दूसरे द्वारा आक्रान्त किये जाने का अनुमोदन करता है। मेरे शत्रुओं पर विश्वास प्रकट करता है। मेरे कथन का उत्तर नहीं देता है। मेरे समान निर्दोष लोगों की निन्दा करता है। मर्म की बातें कहकर मेरा उपहास करता है। मेरे द्वारा वर्णित किये जाते हुए अपने मत को भी काट देता है। मेरी भेजी हुई अमूल्य वस्तुओं की भी प्रशंसा नहीं करता है। नीतिज्ञों के दोषों को मेरे समक्ष मूर्खों से उद्घोषित कराता है। चाणक्य ने सत्य कहा है—'आशय का अनुसरण करने वाले अनर्थकारी लोग भी (राजा को) प्रिय होते हैं। और अनुकूल व्यक्ति भी उसके आशय से अनभिज्ञ होने पर शत्रु हो जाते हैं।' तो भी क्या उपाय है। अविनीत होने पर भी यह राजा पिता, पितामह की परम्परा से चले आये हुए मेरे द्वारा त्याज्य नहीं है। न छोड़ता हुआ भी मैं, जिसकी बात नहीं सुनी जाती है, क्या उपकार करूँगा ? नीति जानने वाले अश्मक-पति वसन्तभानु के हाथ में यह राज्य चला जायगा। क्या आने वाली विपत्तियाँ इसको प्रकृतिस्थ कर देंगी ? (अथवा) सुलभ अपराध वाले अनर्थों से कहीं उत्पन्न हुआ भी द्वेष इसको सदाचार अच्छा न लगने दे(यह भी संभव है)। अस्तु, अनर्थ तो होगा (ही)। मैं चुगलखोरों की जीभ को (या दोष प्रकट करने वाली अपनी जीभ को) वश में रखकर किसी तरह (अपना) पद खोये बिना बना रहूँ।'

टिप्पणी—बालिश्यम्—मूर्खता। बालिशस्य भावः कर्म वा बालिश्यम् बालिश+ष्यञ्। **अरुचितेऽर्थे**—अप्रिय कार्य में। **अक्षिगतः**—द्वेष्य, शत्रु। 'द्वेष्योऽक्षिगत उच्यते' इति हलायुधः। **हास्यः**—हँसी का पात्र। हसितुं योग्यः हास्यः√हस्+ण्यत्। **अयाथापूर्व्यम्**—पहले की तरह न होना। पूर्वम् अनतिक्रम्य इति यथापूर्वम् (अव्य० स०), तस्य भावः यथापूर्व+ष्यञ्=याथापूर्व्यम् न याथापूर्व्यम् अयाथापूर्व्यम् (न० त०)। **विलोभनवस्तु**—लुभाने वाली चीज। वि√लुभ्+णिच्+ल्युट्=विलोभनम्। **सुकृतानि**—उत्तम कार्यों को। **आसन्नकार्येषु**—निकटतम अर्थात् गोपनीय कार्यों में। **न अभ्यन्तरीकरोति**—सम्मिलित नहीं करता है। अनभ्यन्तरम् अभ्यन्तरं सम्पद्यमानं करोति इति अभ्यन्तरीकरोति अभ्यन्तर+च्वि, ईत्व√कृ+लट्—तिप्। **अवष्टभ्यमानम्**—आक्रान्त या दखल किया जाता हुआ। अव√स्तम्भ्+कर्मणि शानच्। **विगर्हति**—निन्दा करता है। गर्ह् धातु आत्मनेपदी है, इसलिए 'विगर्हते' रूप होना चाहिए, किन्तु 'परस्मैपदमप्याहुः क्वचिदेवात्मनेपदे' इस अनुशासन के बल से यहाँ परस्मैपद में प्रयोग हुआ है, ऐसा हम कह सकते हैं। **महार्हाणि**—बहुमूल्यक, बेशकीमती। महान् अर्हः येषां तानि (ब० स०)। **मत्प्रहितानि**—मेरे द्वारा भेजी हुई। **चित्तज्ञानानुर्वातनः**—चित्त का ज्ञान करके या आशय समझकर बरतने वाली। चित्तस्य ज्ञानम् (ष० त०), तत् अनुर्वातितुं शीलमेषाम् इति चित्तज्ञान-अनु√वृत्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये। **अनर्थाः**—अनर्थकारी, दुष्ट, पापी। **दक्षिणाः**—अनुकूल, विनम्र। **तद्भावबहिष्कृताः**—उसके भाव आशय से बाहर रहने वाले, आशयानभिज्ञ। तस्य भावाः (ष० त०), तद्भावेभ्यः बहिष्कृताः (पं० त०)। **पितृपैतामहैः**—पिता-पितामह के क्रम से आये हुए। पिता च पितामहश्च (द्व०स०), पितृपितामहाभ्याम् आगताः इति पितृपैतामहाः पितृपितामह+अण्। **अश्रूयमाणवाचः**—जिनकी वाणी न सुनी जाय। न श्रूयमाणा वाक् येषां ते (न० ब०)। यहाँ वाक्य का तात्पर्य यह है कि यह जब मेरी बात ही नहीं सुनता है तब मैं इसका क्या भला कर सकूंगा। **अश्मकेन्द्रस्य**—अश्मक देश के अधिपति। आधुनिक त्रिवांकुर, ट्रैवनकोर को अश्मक कहते हैं। **प्रकृतिस्थम्**—चेतना या होशहवास में स्थित। प्रकृतौ तिष्ठतीति प्रकृतिस्थः प्रकृति√स्था+क, तम्। **अनर्थेषु**—बुरे कार्यों में। **सुलभव्यलीकेषु**—सुलभ अपराध या दुःख

वाले। सुलभं व्यलीकं येषु (ब० स०), तेषु। यह 'अनर्थेषु' का विशेषण है। **सद्वृत्तम्**—सदाचार, साधु आचरण। **अस्मै**—यहाँ 'रोचयेत्' के योग में 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सूत्र से चतुर्थी हुई है। **स्तम्भितपिशुनजिह्वः**—(अपनी) अप्रियभाषिणी जिह्वा को या चुगुलखोरों की जिह्वा को रोककर। पिशुना चासौ जिह्वा (कर्म० स०) वा पिशुनानां जिह्वा (ष० त०), स्तम्भिता पिशुनजिह्वा येन स स्तम्भितपिशुनजिह्वः (ब० स०)। **अभ्रष्टपदः**—जो पदच्युत न हुआ हो अर्थात् विना अपना मन्त्रिपद खोये। भ्रष्टं पदं यस्य स भ्रष्टपदः (ब० स०) न भ्रष्टपदः अभ्रष्टपदः (न० त०)।

एवं गते मन्त्रिणि, राजनि च कामवृत्ते, चन्द्रपालितो नामाश्मकेन्द्रामात्यस्येन्द्रपालितस्य सूनुः, असद्वृत्तः पितृनिर्वासितो नाम भूत्वा, बहुभिश्चारणगणैर्बह्वीभिरनल्पकौशलाभिः शिल्पकारिणीभिरनेकच्छन्नकिङ्करैश्च गूढपुरुषैः परिवृतोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्। अमुना चैव संक्रमेण राजन्यास्पदमलभत। लब्धरन्ध्रश्च स यद्यद्व्यसनमारभते तत्तथेत्यवर्णयत्—देव, यथा मृगया ह्यौपकारिकी न तथान्यत्। अत्र हि व्यायामोत्कर्षादापत्सूपकर्ता दीर्घाध्वलङ्घनक्षमो जङ्घाजवः, कफापचयादारोग्यैकमूलमाशयाग्निदीप्तिः, मेदोऽपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्, हरिणगवलगवयादिवधेन सस्यलोपप्रतिक्रिया, वृकव्याघ्रादिघातेन स्थलपथशल्यशोधनम्, शैलाटवीप्रदेशानां विविधकर्मक्षमाणामालोचनम्, आटविकवर्गविश्रम्भणम्, उत्साहशक्तिसन्धुक्षणेन प्रत्यनीकवित्रासनमिति बहुतमा गुणाः।

द्यूतेऽपि द्रव्यराशेस्तृणवत्त्यागादनुपमानमाशयौदार्यम्, जयपराजयानवस्थानाद्धर्षविषादयोरविधेयत्वम्, पौरुषैकनिमित्तस्यामर्षस्य वृद्धिः, अक्षहस्तभूम्यादिगोचराणामत्यन्तदुरुपलक्ष्याणां कूटकर्मणामुपलक्षणादनन्तबुद्धिनैपुण्यम्, एकविषयोपसंहाराच्चित्तस्यातिचित्रमैकाग्र्यम्, अध्यवसायसहचरेषु साहसेष्वतिरतिः, अतिकर्कशपुरुषप्रतिसंसर्गादनन्यधर्षणीयता मानावधारणमकृपणं च शरीरयापनमिति।

संस्कृत व्याख्या—····कामवृत्ते—स्वेच्छाचारिणि, ···· सूनुः—पुत्रः, असद्वृत्तः—दुराचार, पितृनिर्वासितः—पित्रा दूरीकृतः, नामेत्यलीके, ···· चारणगणैः—वन्दिभिः गायकैर्वा, ····अनल्पकौशलाभिः—अत्यन्तनिपुणाभिः,

शिल्पकारिणीभिः—चित्रकरीभिः, अनेकच्छन्नकिङ्करैः—वहुगुप्तसेवकैः, ... परिवृतः—युक्तः, ...आत्मसात्—स्ववशीभूतम्, ...संक्रमेण—सम्मेलनेन, राजनि—अनन्तवर्मणि, आस्पदं—प्रतिष्ठाम् ....लब्धरन्ध्रः—प्राप्तच्छिद्रः, ...व्यसनं—मृगयादिकम्, ...तथा—युक्तम्, ... औपकारिकी—उपकारायार्हा, ...अत्र—मृगयायाम्, व्यायामोत्कर्षात्—शारीरपरिश्रमातिरेकात्, ...दीर्घाध्वलङ्घनक्षमः—दूरयात्राकरणसमर्थः, जङ्घाजवः—जङ्घावेगः, कफापचयात्—कफस्य श्लेष्मणः अपचयात् क्षयात्, आरोग्यैकमूलम्—आरोग्यस्य एकम् अद्वितीयं मूलं निदानम्, आशयाग्निदीप्तिः—आशयाग्नेः जठराग्नेः दीप्तिः सन्धुक्षणम्, मेदोऽपकर्षात्—मेदसाम् अपकर्षात् अपचयात्, ...सत्त्वानां—जन्तूनाम्, अवस्थान्तरेषु—अवस्थाविशेषेषु, ...सस्यलोपप्रतिक्रिया—सस्यरक्षा, वृकव्याघ्रादिघातेन—वृकाः ईहामृगाः व्याघ्रादयः शार्दूलादयः तेषां घातेन वधेन, स्थलपथशल्यशोधनं—स्थलपथस्य शल्यानां कण्टकभूतानां शोधनमपनयनम्, शैलाटवीप्रदेशानाम्—पर्वतवनप्रदेशानां, विविधकर्मक्षमाणाम्—नानाकार्ययोग्यानाम्, आलोचनं—ज्ञानम्, आटविकवर्गविश्रम्भणम्—आटविकानाम् आरण्यकानां वर्गः समूहः तस्य विश्रम्भणं विश्वासोत्पदानम्, उत्साहशक्तिसन्धुक्षणेन—उत्साहशक्तेः विक्रमवलस्य सन्धुक्षणेन दीपनेन. प्रत्यनीकवित्रासनम्—प्रत्यनीकानां प्रतिपक्षाणां वित्रासनं भयोत्पादनम् .....।

द्रव्यराशेः—अर्थनिचयस्य ....अनुपमानं ....निरुपमम्, आशयौदार्यं—चित्तस्य उदारता जयपराजयानवस्थानात्—जयपराजययोः अनवस्थानात् अनिश्चितत्वात् ....अविधेयत्वम्—अवशीभूतत्वम् पौरुषैकनिमित्तस्य—पारक्रमैककारणस्य, अमर्षस्य—क्रोधस्य वृद्धिः, अक्षहस्तभूम्यादिगोचराणां—अक्षे पाशकक्रीडायां हस्तगोचराणां 'भूम्यादिगोचराणां च हस्तकौशलेन भूम्यादौ स्थापनकौशलेन च प्रतिपक्षप्रतारणाविषयीभूतानामित्यर्थः, अत्यन्तदुरुपलक्ष्याणाम्—अतिदुरनुभवानां, कूटकर्मणां—कपटव्यवहाराणाम्, उपलक्षणात्—अनुभवात्, ...एकविषयोपसंहारात्—एकस्य विषयस्य व्यापारस्य उपसंहारात् संग्रहावेशात् ग्रहणादित्यर्थः चित्तस्य, अतिचित्रम्—अत्याश्चर्यम्, ऐकाग्रयम्—एकाग्रता, अध्यवसायसहचरेषु—अध्यवसायः उत्साहः दृढतरोद्योग इत्यर्थः स एव सहचरः सहायः येषां तथाभूतेषु, साहसेषु—साहसकर्मसु, अतिरतिः—अत्या-

सक्तिः, अतिकर्कशपुरुषप्रतिसंसर्गात्—अतिकर्कशैः अतिनिष्ठुरैः पुरुषैः प्रतिसंसर्गात् सङ्गत्या सततसहवासात् वा, अनन्यवर्षणीयता—अन्यानभिभवनीयता, मानावधारणं—द्रव्याणां परिमाणज्ञानम्, अकृपणम्—अदीनम् अकातरमित्यर्थः, शरीरयापनं—देहयात्रासम्पादनम् ।

हिन्दी अनुवाद—मंत्री के ऐसा बन जाने पर और राजा के स्वेच्छाचारी हो जाने पर अश्मकराज के मंत्री इन्द्रपालित के चन्द्रपालित नामक दुराचारी पुत्र ने बहाना पूर्वक पिता द्वारा निकाला जाकर बहुत-से चारणों (भाटों), चित्र बनाने वाली अत्यन्त निपुण स्त्रियों और छिपे हुए अनेक सेवकों वाले गुप्तचरों से युक्त हो (विहार-भद्र के) पास पहुँचकर नाना प्रकार की क्रीडाओं से विहारभद्र को अपनी मुट्ठी में कर लिया, और उसी (विहारभद्र रूपी) सेतु (पुल) के सहारे (चन्द्रपालित ने) राजा (अनन्तवर्मा के हृदय) में अपना स्थान बना लिया। छिद्र पाकर वह (चन्द्रपालित) राजा द्वारा आरंभ किये गये प्रत्येक व्यसन को 'बहुत ठीक है' कहकर वर्णन करने लगता था—'महाराज ! शिकार जितना उपकारी है उतनी दूसरी कोई वस्तु नहीं। इस (शिकार) में व्यायाम की उत्कृष्टता होने के कारण आपत्तियों में उपकार करने वाली तथा लंबे मार्ग को तै करने में समर्थ जाँघों में तीव्र गति आ जाती है; कफ का क्षय हो जाने के कारण आरोग्य का एकमात्र निदान जठराग्नि का उद्दीपन होता है चर्बी के कम हो जाने से अंगों में दृढ़ता, कठोरता तथा बहुत फुर्ती आदि आ जाती हैं; सर्दी, गर्मी, वायु, वर्षा, भूख और प्यास सहन करने की शक्ति आती है; विभिन्न अवस्थाओं में प्राणियों के मनोभाव का ज्ञान होता है; हरिण, जंगली भैंस तथा नीलगाय आदि के वध से अनाजों की सुरक्षा होती है; भेड़ियों, बाघ आदि के मार देने से स्थल-मार्ग के कंटकों (विघ्न-बाधाओं) की सफाई हो जाती है; अनेक कार्यों के लिए उपयुक्त पर्वतीय तथा वन्य प्रदेशों की जानकारी हो जाती है; अरण्यनिवासियों में विश्वास उत्पन्न होता है; उत्साह-शक्ति के बढ़ने से शत्रुओं को त्रास होता है; इस प्रकार (शिकार के) बहुत-से गुण हैं।

जुए में भी द्रव्य की राशि को तृण के समान त्यागने से अनुपम हृदय की उदारता आती है; जय-पराजय की अनिश्चितता के कारण हर्ष और विषाद

के वशीभूत नहीं होना पड़ता है; पुरुषार्थ के एकमात्र कारण कोष की वृद्धि होती है; हाथ तथा भूमि आदि संबंधी कपट व्यवहारों की, जिनका अनुभव बड़ी कठिनाई से होता है, जानकारी होने से अनन्त बुद्धि-निपुणता आती है; एक ही विषय में लगे रहने से चित्त में आश्चर्यजनक एकाग्रता उत्पन्न होती है; दृढ़ उद्योग के सहायक साहसों (साहसिक कार्यों) में अत्यन्त रुचि होती है; अत्यन्त कठोर पुरुषों के सम्पर्क में आने के कारण दूसरों के द्वारा न दबाये जाने की योग्यता, द्रव्यों के परिमाण का ज्ञान और दैन्यहीन जीवन-यापन प्राप्त होता है।

टिप्पणी—कामवृत्ते—स्वेच्छाचारी हो जाने पर। कामेन स्वेच्छया वृत्तं वर्तनं यस्य स कामवृत्तः (ब० स०), तस्मिन्। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सूत्रेण सप्तमी। **असद्वृत्तः**—जिसका आचरण ठीक न हो। सत् वृत्तं यस्य स सद्वृत्तः, न सद्वृत्तः असद्वृत्तः (न० त०)। **पितृनिर्वासितो नाम भूत्वा**—पिता द्वारा निष्कासित बनकर। यहाँ 'नाम' शब्द मिथ्या-बोधक है। पिता ने उसे वस्तुतः निकाला नहीं था। उसने झूठा प्रचार करा दिया था कि पिता ने उसे देश निकाला दे दिया है। इसी तरह उसकी असद्वृत्तता भी असत्य ही थी। **अनल्पकौशलाभिः**—बड़ी निपुण। कुशलस्य भावः कौशलम् कुशल+अण्। न अल्पम् अनल्पम् (न० त०), अनल्पं कौशलं यासां ताः अनल्पकौशलाः (ब० स०), ताभिः। **अनेकच्छन्नकिङ्करैः**—अनेक प्रच्छन्न सेवकों वाले। छन्नाः किङ्कराः (कर्म० स०), अनेके छन्नकिङ्कराः येषां ते (ब० स०), तैः। **गूढपुरुषैः**—गुप्तचरों से। **परिवृतः**—घिरा हुआ, युक्त। **आत्मसात्**—अपने वश में। आत्मनः अधीनः इति आत्मसात् आत्मन्+साति, तम्। **संक्रमेण**—सेतु या उपाय से। **आस्पदम्**—स्थान, प्रतिष्ठा। **लब्धरन्ध्रः**—अवकाश या मौका पाकर। लब्धं रन्ध्रं येन सः (ब० स०)। **व्यसनम्**—शिकार आदि। 'स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यार्थदूषणे। दण्डपारुष्यमित्येतन्महाव्यसनसप्तकम्॥' इति वैजयन्ती। **औपकारिकी**—उपकार करने वाली। उपकार+ठक्—इक+ङीप्। **दीर्घाध्वलङ्घनक्षमः**—लंबा रास्ता (यात्रा) पार करने में समर्थ। दीर्घः अध्वा (कर्म० स०), तस्य लङ्घनम् (ष० त०), तस्मिन् क्षमः (स० त०) **स्थैर्य-कार्कश्य०**—स्थिरता, कठिनता तथा बहुत फुर्ती आदि। स्थैर्यं च कार्कश्यं च अति-

लाघवं च (द्व० स०), तानि आदौ येषां तानि स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि (ब० स०)। **शीतोष्ण०**—शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, क्षुधा तथा पिपासा सहन करने की क्षमता। शीतं च उष्णं च वातश्च वर्षश्च क्षुत् च पिपासा च इति शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासा: (द्व० स०), ता: सहते इति शीतोष्ण०√सह्+अच् =शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासह:, तस्य भाव: शीतोष्ण० सहत्वम् शीतोष्ण०+त्व। **हरिणगवलगवयादिवधेन**—हरिण, जंगली भैंसों एवं नीलगाय आदि के मार देने से। हरिणाश्च गवलाश्च गवयाश्च इति हरिणगवलगवया: (द्व० स०), ते आदौ येषां ते हरिणगवलगवयादय: (ब० स०), तेषां वध: (ष० त०), तेन। **सस्यलोपप्रतिक्रिया**—फसल के नष्ट होने से बचाना। **वृक**—भेड़िया। **स्थलपथशल्यशोधनम्**—स्थलमार्गों के काँटों या विघ्नों का सफाया। स्थलस्य पन्थान: (ष० त०), स्थलपथानां शल्यानि, तेषां शोधनम् (ष० त०)। **शैलाटवीप्रदेशानाम्**—पहाड़ी और जंगली इलाकों का। शैलाश्च अटव्यश्च इति शैलाटव्य: (द्व० स०), तासां प्रदेशा: (ष० त०), तेषाम्। **विविधकर्मक्षमाणाम्**—अनेक कार्यों के लिए उपयुक्त। विविधानि च तानि कर्माणि (कर्म० स०), तेषु क्षमा: (स० त०), तेषाम्। **आटविकवर्गविश्रम्भणम्**—जंगली लोगों (के हृदय) में विश्वास उत्पन्न करना। अटव्यां चरन्ति इति आटविका: अटवी+ठक्—इक। **सन्धुक्षण**—बढ़ना, उभड़ना। **प्रत्यनीकवित्रासनम्**—शत्रु-सेनाओं को डराना। प्रतिकूलानि अनीकानि इति प्रत्यनीकानि (प्रा० स०), तेषां वित्रासनम् (ष० त०)। **आशयौदार्यम्**—चित्त की उदारता। आशयस्य औदार्यम् इति आशयौदार्यम् (ष० त०) **अनवस्थान**—अनिश्चित होना। **पौरुषैकनिमित्तस्य**—पुरुषार्थ के प्रधान कारण का। एकं केवलं प्रधानं वा निमित्तम् एकनिमित्तम् (कर्म स०), पौरुषस्य एकनिमित्तम् इति पौरुषैकनिमित्तम् (ष० त०), तस्य। **अक्षहस्तभूम्यादिगोचराणाम्**—पाँसे, हाथ और भूमि आदि विषय हैं जिनके ऐसे। अक्षाश्च हस्तश्च भूमिश्च इति अक्षहस्तभूमय: (द्व० स०), ता: आदौ येषां ते अक्षहस्तभूम्यादय:, ते गोचरा: (क्षेत्राणि विषया वा) येषां ते अक्षहस्तभूम्यादिगोचरा:(ब० स०), तेषाम्। **अत्यन्तदुरुपलक्ष्याणाम्**—जिनका अनुभव करना या देख सकना अत्यन्त कठिन हो। अत्यन्तं दुरुपलक्ष्याणि इति अत्यन्तदुरुपलक्ष्याणि (सुप्सुपा स०), तेषाम्। **कूटकर्मणाम्**—कपटपूर्ण कार्यों का।

एकविषयोपसंहारात्—एक ही विषय में लगे रहने के कारण एकश्चासौ विषयः (कर्म० स०), तस्मिन् उपसंहार (स० त०), तस्मात्। **अध्यवसायसहचरेषु**—उद्योग के साथी। अधि—अव√सो+घञ्=अध्यवसायः, तस्य सहचराः तेषु। **अनन्यधर्षणीयता**—दूसरों द्वारा न दवाये जाने की शक्ति। अन्यैः घर्षणीयः (त० त०), न अन्यधर्षणीयः (न० त०), अनन्यधर्षणीयस्य भावः अनन्यधर्षणीयता अनन्यधर्षणीय+तल्+टाप्। **मानावधारणम्**—द्रव्यों के परिमाण का ज्ञान या स्वाभिमान की उत्पत्ति। **शरीरयापनम्**—जीवन-निर्वाह।

उत्तमाङ्गनोपभोगेऽप्यर्थधर्मयोः सफलीकरणम्, पुष्कलः पुरुषाभिमानः भावज्ञानकौशलम्, अलोभक्लिष्टमाचेष्टितम्, अखिलासु कलासु वैचक्षण्यम्, अलब्धोपलब्धिलब्धानुरक्षणरक्षितोपभोगभुक्तानुसन्धानरुष्टानुनयादिष्वजस्रमभ्युपायरच नया बुद्धिवाचोः पाटवम्, उत्कृष्टशरीरसंस्कारात्सुभगवेषतया लोकसम्भावनीयता, परं सुहृत्प्रियत्वम्, गरीयसी परिजनव्यपेक्षा, स्मितपूर्वाभिभाषित्वम्, उद्रिक्तसत्त्वता, दाक्षिण्यानुवर्तनम्। अपत्योत्पादनेनोभयलोकश्रेयस्करत्वमिति।

पानेऽपि नानाविधरोगभङ्गपटीयसामासवानामासेवनात्स्पृहणीयवयोव्यवस्थापनम्, अहङ्कारप्रकर्षादशेषदुःखतिरस्करणम्, अङ्गजरागदीपनादङ्गनोपभोगशक्तिसन्धुक्षणम्, अपराधप्रमार्जनान्मनःशल्योन्मार्जनम्, अश्राव्यशंसिभिरनर्गलप्रलापैर्विश्वासोपबृंहणम्, मत्सराननुबन्धादानन्दैकतानता, शब्दादीनामिन्द्रियार्थानां सातत्येनानुभवः, संविभागशीलतया सुहृद्वर्गसंवर्गणम्, अनुपमानमङ्गलावण्यम्, अनुत्तराणि विलसितानि, भयार्तिहरणाच्च साङ्ग्रामिकत्वमिति।

वाक्पारुष्यं दण्डो दारुणो दूषणानि चार्थानामेव यथावकाशमौपकारिकाणि। नहि मुनिरिव नरपतिरुपशमरतिरभिभवितुमरिकुलमलम्, अवलम्बितुं च लोकतन्त्रम्' इति।

संस्कृत व्याख्या—उत्तमाङ्गनोपभोगे—सुन्दरस्त्रीभिः रमणे, ···· पुष्कलः—अत्यधिकः, पुरुषाभिमानः—पुरुषोऽहमित्यभिमानः, भावज्ञानकौशलं—भावस्य आशयस्य ज्ञाने कौशलं नैपुण्यम्, अलोभक्लिष्टं—निर्लोभम्, आचेष्टितं—व्यवहारः, अखिलासु कलासु—चतुःषष्टिविधासु, शिल्पविद्यासु, वैचक्षण्यम्—नैपुण्यम्, अलब्धोपलब्धि०—अलब्धस्य वस्तुनो वनिताजनस्य वा उपलब्धिः लाभः लब्धस्य अनुरक्षणं पालनं रक्षितस्य उपभोगः भुक्तस्य अनुसन्धानं स्मरणं रुष्टस्य क्रुद्धस्य

अनुनयः समाधानम् इत्यादिषु विषयेषु, अजस्रं—निरन्तरम्, अभ्युपायरचनया, बुद्धिवाचोः—मतिवचनयोः, पाटवं—कौशलम्, ·····सुभगवेषतया—सुस्वरूपत्वेन, लोकसम्भावनीयता—लोकानां सम्भावनीयता आदरणीयता,······ परिजनव्यपेक्षा—परिजनेषु परिवारेषु व्यपेक्षा निरनुरोधत्वम्,······उद्रिक्तसत्त्वता—समधिकसारत्वम्, ·····दाक्षिण्यानुवर्तनं—सारल्यानुसरणम्····· पाने—मद्यपाने, अपि, नानाविधरोगभङ्गपटीयसाम्—नानाविधानां रोगाणां व्याधीनां भङ्गे नाशे पटीयसां दक्षाणाम्, आसवानां—मद्यानाम्, आसेवनात्—पानात्, स्पृहणीयवयोव्यवस्थापनम्—स्पृहणीयस्य अभिलषणीयस्य वयसः अवस्थायाः यौवनस्येत्यर्थः व्यवस्थापनं संरक्षणम्, ····अशेषदुःखतिरस्करणम्—निखिलकष्टाच्छादनम्, अङ्गजरागदीपनात्—अङ्गजस्य कामस्य रागः इच्छा तस्य दीपनात् वृद्धेः सन्धुक्षणम्—उत्तेजनम्, अपराधप्रमार्जनात्—अपराधस्य दोषस्य प्रमार्जनात् अवहेलनात्, मनःशल्योन्मार्जनम्—मनःशल्यस्य चित्तोद्वेगस्य उन्मार्जनं निरसनम्, अश्राव्यसशंसिभिः—अश्राव्यं श्रावयितुमयोग्यं यत्तस्यापि शंसिभिः सूचकैः, अनर्गलप्रलापैः—यथेच्छमनर्थकवचनैः, विश्वासोपबृंहणम्—विश्वासस्य उपबृंहणं वर्धनम्, मत्सराननुबन्धात्—मत्सरस्य मात्सर्यस्य अननुबन्धात् अननुसरणात्, आनन्दैकतानता—केवलानन्दमयत्वम्, शब्दादीनाम्, इन्द्रियार्थानाम्—इन्द्रियभोग्यवस्तूनां, सातत्येन—नैरन्तर्येण, अनुभवः—भोगः, संविभागशीलतया—सुविवेकवत्तयेत्यर्थः, सुहृद्वर्गसंवर्गणम्—सुहृद्वर्गस्य मित्रसमूहस्य संवर्गणम् एकत्रीकरणम्, अनुत्तराणि—परमोत्कर्षाणि, विलसितानि—विलासाः, भयार्तिहरणाच्च—भयेन या आर्तिः, पीडा तस्या हरणात् नाशनात्, साङ्ग्रामिकत्वं—युद्धपटुत्वमित्यर्थः, वाक्पारुष्यं—कटुवचनप्रयोगः, दारुणः दण्डः—दण्डपारुष्यमित्यर्थः, अर्थानां दूषणानि—देयस्य अदानम् अदत्तस्य बलात् हरणमित्यादीनि, यथावकाशं—यथासमयम्, औपकारिकाणि—उपकारक्षमाणि। ·····उपशमरतिः—उपशमे शान्तौ रतिः अनुरागो यस्य तादृशः नरपतिः, अरिकुलं—शत्रुसमूहम्, अभिभवितुम्—पराजेतुं, लोकतन्त्रं—राष्ट्रसाधनम्, अवलम्बितुं—धारयितुञ्च, अलं—समर्थः।'

हिन्दी अनुवाद—उत्तम स्त्रियों के साथ संभोग करने से भी अर्थ और धर्म की सफलता प्राप्त होती है; पुरुषत्व का पूर्ण अभिमान जागता है; भाव समझने

की निपुणता प्राप्त होती है; निर्लोभ व्यवहार होता है; निखिल कलाओं में कौशल प्राप्त होता है; अलब्ध वस्तु का लाभ, लब्ध वस्तु की रक्षा, रक्षित वस्तु का उपभोग, भोगी हुई वस्तु की खोज और क्रुद्ध व्यक्ति को मनाना इत्यादि बातों में निरन्तर उपाय करते रहने के कारण बुद्धि तथा वाणी में पटुता आती है; शरीर का उत्तम संस्कार (सफाई आदि) करने से सुन्दर स्वरूप बन जाने के कारण लोगों में आदर होता है; मित्रों का अत्यधिक प्रेम प्राप्त होता है; स्वजनों के प्रति अत्यधिक दाक्षिण्य (स्नेहभाव) बढ़ता है; मुस्कराकर बोलना, अधिक बलशालिता तथा उदारता का अनुसरण प्राप्त होता है। सन्तानोत्पादन द्वारा दोनों लोकों में श्रेयः साधन किया जाता है।

मद्य-पान में भी नाना प्रकार के रोगों को नष्ट करने में समर्थ मद्यों के सेवन से स्पृहणीय वय (यौवन) सुस्थिर होता है; अहंकार के अधिक होने से सकल दुःखों का तिरोभाव हो जाता है; कामेच्छा के उद्दीप्त होने से स्त्री के साथ संभोग करने की शक्ति तीव्र होती है; (दूसरे के) अपराधों के क्षमा करते रहने से मन का उद्वेग दूर हो जाता है; न सुनने योग्य (अर्थात् गुप्त) बातों को भी बता देने वाले अनर्गल प्रलापों के कारण (लोगों का) विश्वास बढ़ता है; मात्सर्य का अनुसरण न करने से केवल आनन्दमयता प्राप्त होती है; इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों का सतत अनुभव होता है; बाँट-बूँट कर खाते पीते रहने का स्वभाव पड़ जाने से मित्रों का जमघट लगा रहता है; अंगों में अनुपम लावण्य आ जाता है; अलौकिक विलास प्राप्त होते हैं; भय और पीड़ा के हरण हो जाने से युद्ध-पटुता प्राप्त होती है;

वाणी की कठोरता, भयंकर दण्ड और अर्थ-दूषण (देय वस्तु को न देना और न दी हुई वस्तु को बलपूर्वक ले लेना आदि) यथासमय उपकारक होते हैं। मुनि के समान शान्तिप्रिय राजा न तो शत्रु-समूह को पराजित कर सकता है और न शोकतन्त्र का अवलम्बन (शासन) ही कर सकता है।'

टिप्पणी—उत्तमाङ्गनोपभोगे—उच्च कोटि की रमणियों के साथ संभोग करने में। उत्तमाश्च ताः अङ्गनाः (कर्म० स०) तासाम् उपभोगः (ष० त०) तस्मिन्। **सफलीकरणम्**—सफल करना। न सफलम् असफलम् असफलस्य सफलं करणम् इति सफलीकरणम् सफल+च्वि ईत्व√कृ+ल्युट्। यहाँ चन्द्र-

पालित के कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तम स्त्रियों के साथ संभोग करने से धन का सदुपयोग तो होता ही है सन्तानोत्पादन द्वारा धर्म-सम्पादन भी होता है। **पुष्कलः**—प्रचुर। **भावज्ञानकौशलम्**—(दूसरे का) भाव समझने की चतुरता। **अलोभक्लिष्टम्**—लोभ से पीडित नहीं, निर्लोभ। न लोभः अलोभः (न० त०) तेन क्लिष्टम् (तृ० त०)। **अलब्धोपलब्धि०**—अलब्ध (न मिली हुई) वस्तु या उत्तम स्त्री का लाभ, लब्ध की रक्षा, रक्षित का उपभोग, उपभुक्त की जाँचपड़ताल और रुष्ट को प्रसन्न करना इत्यादि में। अलब्धस्य उपलब्धिः, लब्धस्य अनुरक्षणम्, रक्षितस्य उपभोगः, भुक्तस्य अनुसन्धानम्, रुष्टस्य अनुनयः (ष० त०), अलब्धोपलब्धिश्च लब्धानुरक्षणं च रक्षितोपभोगश्च भुक्तानुसन्धानं च रुष्टानुनयश्च इति अलब्धोपलब्धि····नयाः (द्व० स०), ते आदौ येषां ते अल०····दयः, तेषु। **पाटवम्**—पटुता। **उत्कृष्टशरीरसंस्कारात्**—शरीर की उत्तम सजावट के कारण। शरीरस्य संस्कारः (ष० त०), उत्कृष्टः शरीरसंस्कारः (कर्म० स०), तस्मात्। **सुभगवेषतया**—सुन्दर वेश से युक्त होने के कारण। सुभगः वेषः (कर्म० स०), तस्य भावः सुभगवेषता सुभगवेष+तल्+टाप् तया। **लोकसम्भावनीयता**—लोक में सम्माननीय होना। लोकैः सम्भावनीयः लोकसम्भावनीयः (तृ० त०), तस्य भावः लोकसम्भावनीयता लोकसम्भावनीय+तल्+टाप्। **गरीयसी**—बड़ी। गुरु+ईयसुन्+ङीप्। **परिचनव्यपेक्षा**—स्वजनों के प्रति स्नेह या सम्मान। परिजनेषु व्यपेक्षा परिजनव्यपेक्षा (स० त०)। **स्मितपूर्वाभिभाषित्वम्**—मुसकराकर बोलना। स्मितं पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (ब० स०) स्मितपूर्वम् अभिभाषते तच्छीलः इति स्मितपूर्व-अभि√भाष्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये, उपपदस०=स्मितपूर्वाभिलाषी, तस्य भावः स्मितपूर्वाभिभाषित्वम्। **उद्रिक्तसत्त्वता**—प्रबल शक्ति। उद्रिक्तं सत्त्वं यस्य सः (ब० स०), उद्रिक्तसत्त्वस्य भावः उद्रिक्तसत्त्वता। **उभयलोकश्रेयस्करत्वम्**—दोनों लोकों में कल्याणकारी होना। उभयौ लोकौ (कर्म० स०), उभयलोकयोः श्रेयस्करः (स० त०), तस्य भावः उभयलोकश्रेयस्करत्वम्। **नानाविधरोगभङ्गपटीयसाम्**—अनेक प्रकार के रंगों के नाश करने में समर्थ। नानाविधाः रोगाः (कर्म० स०), तेषा भङ्गः (ष० त०), तस्मिन् पटीयांसः (स० त०),

तेषाम्। **स्पृहणीयवयोव्यवस्थापनम्**—सुन्दर अवस्था (यौवन) को अक्षुण्ण रखना। स्पृहणीयं वयः (कर्म० स०), तस्य व्यवस्थापनम् (ष० त०)। **अशेषदुःखतिरस्करणम्**—सब दुःखों को दबाना। **अङ्गजरागदीपनात्**—वासना की उभाड़ने से। **अङ्गनोपभोगशक्तिसंधुक्षणम्**—स्त्री-संभोग की शक्ति को बढ़ाना। **मनःशल्योन्मार्जनम्**—मानसिक व्यथा को दूर रकना। **अश्राव्यशंसिभिः**—गोपनीय बातों के सूचक। अश्राव्याणि शंसितुं शीलमेषाम् इति आश्राव्य√शंस्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये=अश्राव्यशंसिनः, तैः। **उपबृंहण**—वृद्धि। **इन्द्रियार्थानाम्**—इन्द्रियों के विषयों का। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—कान, नेत्र, जिह्वा, नासिका और त्वचा। इनके क्रमशः पाँच विषय हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। **संविभागशीलतया**—समान रूप से हिस्सा बाँटना। संविभागः शीलं स्वभावो यस्य स संविभागशीलः (ब० स०), तस्य भावः संविभागशीलता, तया। **संवर्गण**—इकट्ठा होना। **अनुत्तराणि**—सर्वोत्तम। **विलसितानि**—आमोद-प्रमोद। **सांग्रामिकत्वम्**—युद्धपटुता। संग्रामे साधुः साग्रामिकः संग्राम+ठक्—इक। तस्य भावः सांग्रामिकत्वम्। **वाक्पारुष्यम्**—वाणी की कठोरता। **अर्थानां दूषणानि**—धन के दोष, धन के गड़बड़-सड़बड़ व्यवहार। **औपकारिकाणि**—उपकार करने में समर्थ। उपकारे साधूनि इति औपकारिकाणि, उपकार+ठक्—इक।

असावपि गुरूपदेशमिवात्यादरेण तस्य मतमन्ववर्तत। तच्छीलानुसारिण्यश्च प्रकृतयो विशृङ्खलमसेवन्त व्यसनानि। सर्वश्च समानदोषतया न कस्यचिच्छिद्रान्वेषणायायतिष्ट। समानभर्तृप्रकृतयस्तन्त्राध्यक्षाः स्वानि कर्मफलान्यभक्षयन्। ततः क्रमादायद्वाराणि व्यशीर्यन्त। व्ययमुखानि विटवैधेयतया विभोरहरहर्व्यवर्धन्त। सामन्तपौरजानपदमुख्याश्च समानशीलतयोपारूढविश्रम्भेण राज्ञा सजायाः पानगोष्ठीष्वभ्यन्तरीकृताः स्वं स्वमाचारमत्यचारिषुः।

तदङ्गनासु चानेकापदेशपूर्वमपाचरन्नरेन्द्रः। तदन्तः पुरेषु चामी भिन्नवृत्तेषु मन्दत्रासा बहुसुखैरवर्तन्त। सर्वश्च कुलाङ्गनाजनः सुलभभङ्गिभाषणरतो भग्नचारित्रयन्त्रणस्तृणायापि न गणयित्वा भर्तृन्धातृगणमन्त्रणान्यशृणोत्। तन्मूलाश्च कलहाः सामर्षाणामुदभवन्। अहन्यन्त दुर्बला बलिभिः। अपहृतानि

धनवतां धनानि तस्करादिभिः। अपहृतपरिभूतयः प्रहताश्च पातकपथाः। हतबान्धवा हृतवित्ता वधबन्धातुराश्च मुक्तकण्ठमाक्रोशन्नश्रुकण्ठ्यः प्रजाः।

संस्कृत व्याख्या—असावपि—अनन्तवर्मापि, ····तस्य—चन्द्रपालितस्य, मतम्, अन्ववर्तत—अन्वसरत्। तच्छीलानुसारिण्यः—नृपस्वभावानुवर्तिन्यः, प्रकृतयः—प्रजाः, विशृखलं—यथेच्छम्, व्यसनानि—पूर्वोक्तानि सुरादीनि, असेवन्त। ····छिद्रान्वेषणाय—दोषानुसन्धानाय, ···समानभर्तृप्रकृतयः—समानाः भर्ता प्रकृतयः प्रजाश्च येषां तादृशाः, तन्त्राध्यक्षाः—राजकार्याधिकारिणः स्वानि—स्वकीयानि, कर्मफलानि—पूर्वसुकृतफलानि राजस्वादीनि वा, अभक्षयन्—खादितवन्तः तेऽपि दुर्वृता अभवन्नित्यर्थः। ···आयद्वाराणि—अर्थागमोपायाः, व्यशीर्यन्त—क्षीणा बभूवुः।····विटवैधेयतया—विटत्वेन परदारासक्तत्वेन वैधेयतया मूर्खतया (विटविधेयतयेति पाठे विटानां धूर्तानां विधेयतया वशीभूततया), विभोः—स्वामिनः, अहरहः—प्रतिदिनम्,····सामन्तपौरजानपदमुख्याश्च—सामन्ता अधीना नृपा इत्यर्थः तथा पौराः पुरवासिनः जानपदाश्च ग्रामीणाः तेषु मुख्याः प्रधानपुरुषाः, समानशीलतया—तुल्यस्वभावत्वेन, उपारूढविश्रम्भेण—उपारूढः जातः विश्रम्भः विश्वासः यस्य तादृशेन, राज्ञा, सजायाः—सस्त्रीकाः, पानगोष्ठीषु—मद्यपानसभासु, अभ्यन्तरीकृता—प्रवेशिताः, ····अत्यचारिषुः—अतिक्रामन्ति स्म। तदङ्गनासु—तेषां सामन्तादीनामङ्गनासु स्त्रीषु, नरेन्द्र—अनन्तवर्मा, अनेकापदेशपूर्वम्—बहुकपटपूर्वम्, अपाचरत्—व्यभिचारमकरोदित्यर्थः। तदन्तःपुरेषु—तस्य नृपस्य अन्तःपुरेषु स्त्रीषु, भिन्नवृत्तेषु—भ्रष्टचारित्रेषु, मन्दत्रासाः—निर्भया इत्यर्थः, अमी—सामन्तादयः, ····सुलभभङ्गिभाषणरतः—सुलभं सहजं यत् भङ्गिभाषणं वक्रोक्तरचनं तत्र रतः तत्पर इत्यर्थः, भग्नचारित्रयन्त्रणः—भग्नं नष्टं चारित्रस्य सदाचाररक्षणस्य यन्त्रणं बन्धनं यस्य तादृशः कुलाङ्गनाजनः—प्रमदाजनः, भर्तॄन्—स्वामिनः, तृणायापि न गणयित्वा—लेशमात्रमपि आदरं न कृत्वा, धातृगणमन्त्रणानि—धातृणां जाराणां गणः समूहः तस्य मन्त्रणानि वचनानि, ···तन्मूलाः—तन्निबन्धनाः, कलहाः—विवादाः सामर्षाणां—सक्रोधानाम्ः असहिष्णनामिति यावत्, उदभवन्। । पातकपथाः—पापमार्गाः, अपहृतपरिभूतयः—अपहृता दूरीकृता परिभूतिः तिरस्क्रिया येभ्यः तादृशाः, प्रहताश्च—विस्तारं गताश्च।

····वधवन्धातुराः—प्राणघातेन कारागारनिषेवणेन पीडिताः, अश्रुकण्ठ्यः—बाष्पगद्गदस्वराः, प्रजाः, मुक्तकण्ठम्—उच्चैः स्वरेण, आक्रोशन्—रुदन्ति स्म।

हिन्दी अनुवाद—अनन्तवर्मा भी गुरु के उपदेश के समान अत्यन्त आदर के साथ उसके मत का अनुसरण करने लगा। उसके स्वभाव का अनुसरण करने वाली प्रजाएँ भी यथेच्छ रूप से दुर्व्यसनों का सेवन करने लगीं। सब समान रूप से दोषी होने के कारण किसी के छिद्रान्वेषण के लिए प्रयत्न नहीं करते थे। स्वामी और प्रजा के समान (आचरण करने वाले) राजकार्याधिकारी लोग अपने (अपने) कर्मों का फल भोगने लगे (अर्थात् अपने पुण्यों का फल सुख भोगते हुए दुराचरण करने लगे या राजस्व वसूल कर अपने काम में लगाने लगे)। तब क्रमशः आय (आमदनी) के (सभी) द्वार छिन्न-भिन्न हो गए। परस्त्री में आसक्त तथा मूर्ख होने के कारण राजा के व्यय (खर्च) के मुँह बढ़ने लगे। सामन्त (अधीनस्थ राजा या जागीरदार), नागरिक तथा ग्रामवासी (या गाँव के मुखिये) समान शील (आचरण) के होने के कारण उत्पन्न विश्वास वाले राजा द्वारा मदिरापान की गोष्ठी में स्त्रियों समेत सम्मिलित कर लिये जाने पर अपने-अपने (मर्यादित) आचरणों का उल्लंघन करने लगे।

राजा तरह-तरह के कपट करके उनकी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने लगा। वे भी निर्भीक होकर भ्रष्ट चरित्र वाली, उस (राजा) के अन्तःपुर की महिलाओं के साथ बहुत आनन्द लूटने लगे। स्वाभाविक रूप से व्यंग्य बोलने में तत्पर और सदाचार-पालन के बंधन से रहित समस्त महिलाएँ स्वामियों को तृण के बराबर भी न मानकर जार पुरुषों की सलाह मानने लगीं। उनके कारण ही असहिष्णु पुरुषों में झगड़े पैदा हो गए। बलवानों ने दुर्बलों को मार दिया। चोर आदि ने धनवानों के धन चुरा लिये। पाप के मार्ग तिरस्कार से रहित होकर फैल गए। प्रजाएँ, जिनके बन्धु-बान्धव मार डाले गए थे, धन लूट लिये गए थे और जो हत्या तथा कैद से व्याकुल हो गई थीं, कंठों में आँसू भर-भर कर उच्च स्वर से रोने लगीं।

टिप्पणी—तस्य मतम् अन्ववर्तत—उसके मत का अनुसरण किया, उसकी बात मान ली। **तच्छीलानुसारिण्यः**—उस (राजा) के स्वभाव का अनुसरण

करने वाली। तस्य शीलम् (ष० त०) तच्छीलम् अनुसर्तुं शीलं यासाम् ताः तच्छीलानुसारिण्यः, तच्छील-अनु+सृ+णिनि। विशृंखलम्—नियन्त्रण-रहित। विगता शृंखला यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् (ब० स०)। **व्यसनानि**—दुराचार, बुराइयाँ। व्यसन ये कहलाते हैं—'मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाटचा च कामजो दशको गुणः। पैशुन्यं साहसं द्रोहः ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ **समानदोषतया**—समान रूप से दोषी होने के कारण। समानाः दोषाः येषु तै समानदोषाः (ब०स०), तेषां भावः समानदोषता समानदोष+तल्+टाप्, तया। **समानभर्तृप्रकृतयः**—जिनका स्वामी और प्रजायें एक समान (दुर्वृत्त) हो गई थीं। भर्ता च प्रकृतयश्च इति भर्तृप्रकृतयः (द्व० स०), समानाः भर्तृप्रकृतयो येषां ते (ब०स०)। **तन्त्राध्यक्षाः**—प्रमुख राजकर्मचारी, सेनापति आदि। **विटवैधेयतया**—परस्त्रीलम्पट तथा मूर्ख होने के कारण। विटश्चासौ वैधेयः विटवैधेयः (कर्म० स०), तस्य भावः विटवैधेयता, तया। **अहरहः**—प्रतिदिन। अहनि अहनि इति अहरहः (अव्य० स०), नस्य रुत्वम्। **सामन्तपौरजानपदमुख्याः**—सामन्तों, पुरवासियों एवं ग्रामवासियों में प्रमुख लोग। सामन्ताश्च पौराश्च जानपदाश्च इति सामन्तपौरजानपदाः (द्व०स०), तेषु मुख्याः (स०त०)। **उपारूढविश्रम्भेण**—जिसे विश्वास उत्पन्न हो गया हो। उपारूढः विश्रम्भः यस्य सः (ब० स०), तेन। **सजायाः**—स्त्री सहित। जायाभिः सहिताः सजायाः (ब०स०)। **अनेकापदेशपूर्वम्**—अनेक बहानों से। न एके अनेके (न० त०), अनेके अपदेशाः अनेकापदेशाः (कर्म० स०), अनेकापदेशाः पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (ब०स०)। **अन्तःपुरेषु**—राजमहिलाओं में। **भिन्नवृत्तेषु**—चरित्रहीन। भिन्नं चरित्रं येषां तानि भिन्नवृत्तानि (ब०स०) तेषु। यह 'अन्तःपुरेषु' का विशेषण है। **कुलाङ्गनाजनः**—कुलवधुएँ? कुलाङ्गनानां जनः समूहः (ष०त०)। **सुलभभङ्गिभाषणरतः**—आसानी से व्यंग्य बोलने में तत्पर। सुलभं भङ्गिभाषणम् (कर्म० स०), तस्मिन् रतः (स० त०)। **भग्नचारित्रयन्त्रणः**—जिस का सदाचार रूपी बन्धन टूट गया हो। चारित्रस्य यन्त्रणम् (ष० त०), भग्नं चारित्रयन्त्रणं यस्य सः अथवा भग्नं चारित्रमेवं यन्त्रणं येन सः (ब०स०) **तृणायापि न गणयित्वा**—तृण

के बराबर भी न समझकर। 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु' सूत्र से 'तृणाय' में चतुर्थी हुई है। **धातृगणमन्त्रणानि**—जार पुरुषों की सलाह को। धातॄणां गणः, तस्य मन्त्रणानि (ष०त०)। **तन्मूलाः**—वह (भ्रष्टाचरण ही) मूल है जिनके ऐसे। तत् भिन्नवृत्तम् एव मूलं येषां ते (ब०स०)। **सामर्षाणाम्**—क्रुद्धों या असहनशील लोगों का। अमर्षेण सहिताः सामर्षाः (ब० स०), तेषाम्। **अपहृतपरिभूतयः**—जिनमें तिरस्कार का डर न रह गया हो। अपहृता परिभूतिः येषां ते (ब० स०)। **प्रहताः**—विस्तृत। **पातकपथाः**—पाप के मार्ग। पातकस्य पन्थानः (ष०त०), 'ऋक्पूरब्धूः'—इत्यनेन अप्प्रत्ययः। **वधबन्धातुराः**—हत्या तथा बन्धन (कैद) से आतुर। वधश्च बन्धश्च इति वधबन्धौ (द्व० स०), ताभ्याम् आतुराः (तृ० त०)। **मुक्तकण्ठम्**—बहुत ज़ोर से, गला फाड़कर। मुक्तः कण्ठः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (ब०स०) **अश्रुकण्ठ्यः**—जिनके गले आँसू से रुँधे हुए थे। अश्रूणि कण्ठे यासां ताः (ब० स०)।

दण्डश्चायथाप्रणीतो भयक्रोधावजनयत्। कृशकुटुम्बेषु लोभः पदमधत्त। विमानिताश्च तेजस्विनोऽमानेनादह्यन्त। तेषु तेषु चाकृत्येषु प्रासरन्परोपजापाः। तदा च मृगयुवेषमृगबाहुल्यवर्णनेनाद्रिद्रोणीरनपसारमार्गाः शुष्कतृणवंशगुल्माः प्रवेश्य द्वारतोऽग्निविसर्गैः, व्याघ्रादिवधे प्रोत्साह्य तन्मुखपातनैः, इष्टकूपतृष्णोत्पादनेनातिदूरहारितानां प्राणहारिभिः क्षुत्पिपासाविवर्धनैः, तृणगुल्मगूढच्छन्नः तटप्रदरपातहेतुभिर्विषममार्गप्रधावनैः विषमुखीभिः क्षुरिकाभिश्चरणकण्टकोद्धरणैः विष्वग्विसरविच्छिन्नानुयातृतयैकाकीकृतानां यथेष्टघातनैः, मृगदेहापराद्धैर्नामिषुमोक्षणैः, सपणबन्धमधिरुह्याद्रिशृङ्गाणि दुरधिरोहाण्यनन्यलक्ष्यैः प्रभ्रंशनैः, आटविकच्छद्मना विपिनेषु विरलसैनिकानां प्रतिरोधनैः, अक्षद्यूतपक्षियुद्धयात्रोत्सवादिसंकुलेषु बलवदनुप्रवेशनैः इतरेषां हिंसोत्पादनैः गूढोत्पादितव्यलीकेभ्योऽप्रियाणि प्रकाशं लब्ध्वा साक्षिषु तद्विख्याप्याकीर्तिगुप्तिहेतुभिः पराक्रमैः, परकलत्रेषु सुहृत्त्वेनाभियोज्य जारान् भर्तुर्भयमपहृत्य तत्साहसोपन्यासैः, योग्यनारीहारितानां संकेतेषु प्रागुपनिलीय पश्चादभिद्रुत्याकीर्तनीयैः प्रमापणैः, उपप्रलोभ्य बिलप्रवेशेषु निधानखननेषु च विघ्नव्याजसाध्यैर्व्यापादनैः, मत्तगजाधिरोहणाय प्रेर्य प्रत्यपायनिवर्तनैः, व्यालहस्तिनं कोपयित्वा

लक्ष्यीकृतमुख्यमण्डलेष्वपक्रमणैः, दायाद्यर्थे विवदमानानुपांशु हत्वा प्रतिपक्षेष्व-यशः पातनैः, सामन्तपुरजनपदेष्वयथावृत्तानप्रकाशमभिप्रहृत्य तद्वैरिनामघोषणैः, योग्याङ्गनाभिरहर्निशमभिरमय्य राजयक्ष्मोत्पादनैः, वस्त्राभरणमाल्याङ्गरागा-दिषु रसविधानकौशलैः, चिकित्सामुखेनामयोपबृंहणैरन्यैश्चाभ्युपायैरश्मकेन्द्र-प्रयुक्तास्तीक्ष्णरसदादयः प्रक्षपितप्रवीरमनन्तवर्मकटकं जर्जरमकुर्वन् ।

संस्कृत व्याख्या—दण्डः—राजकीयविचारज इति शेषः, अयथाप्रणीतः—अन्यायकृतः,····कृशकुटुम्बेषु—निर्धनपरिवारेषु, लोभः, पदं—स्थानम्,····अकृत्येषु—अकार्येषु, परोपजापाः—शत्रुप्रयुक्ता भेदा इत्यर्थः, प्रासरन्—प्राव-र्तन्त। तदा—भेदे समुत्पन्ने, मृगयुवेषमृगबाहुल्यवर्णनेन—मृगयुवेषेण व्याधरूप-धारिणा मृगबाहुल्यवर्णनेन मृगप्राचुर्यकीर्तनेन, अद्रिद्रोणीः—पर्वतमध्यपद्धतीः, अनपसारमार्गाः—नास्ति अपसारमार्गो निर्गमनमार्गो यासु ताः, शुष्कतृणवंश-गुल्माः—शुष्काणि तृणानि वंशगुल्माः वेणुस्तम्बाश्च यासु ताः, द्वारतः, प्रवेश्य (जनानिति शेषः), अग्निविसर्गैः—अनलप्रदानैः (अनन्तवर्मकटकं जर्जरमकुर्वन् इत्यनेनान्वयः एवं सर्वत्रापि), व्याघ्रादिवधे प्रोत्साह्य—अस्मिन् वने व्याघ्रः स्थितः तं हत्वा राज्यं रक्षत स्वस्य च वीर्यं दर्शयतेत्येवंरूपेण उद्दीप्य, तन्मुख-पातनैः—व्याघ्रमुखपातनैः, इष्टकूपतृष्णोत्पादनेन—इष्टेषु मनोज्ञेषु कूपेषु तृष्णोत्पादनेन तत्र मनोज्ञः कूपोऽस्ति तस्यैव जलं पातव्यमिति तृष्णामुत्पाद्य, अतिदूरहारितानां—बहुदूरं नीतानाम्, प्राणहारिभिः—प्राणनाशकैः,.... तृणगुल्म०—तृणानां गुल्मैः स्तम्बैः गूढं छन्नं तटं यस्य तादृशे प्रदरे गर्ते पातस्य पातनस्य हेतुभिः कारणैः, विषममार्गप्रधावनैः—विषममार्गो दुर्गवर्त्म तत्र प्रधावनैः प्रकर्षेण द्रुतगमनैः, विषमुखीभिः—विषलिप्ताग्राभिः, क्षुरिकाभिः—शस्त्रिकाभिः, चरणकण्टकोद्धरणैः—चरणेभ्यः पादेभ्यः कण्टकोद्धरणैः कण्टकबहिष्करणैः, विष्वग्विसरविच्छिन्नानुयातृतया—विष्वक् समन्ताद् विसरेण प्रसरणेन विच्छिन्ना भ्रष्टा अनुयातारो अनुसारिणो येषां तेषां भावः तया, एकाकीकृतानां—निः-सहायानामित्यर्थः, यथेष्टघातनैः:,—यथेच्छमारणैः, मृगदेहापराद्धैः—मृगदेहे मृगशरीरे अपराद्धैः लक्ष्यभ्रष्टैः, नामेत्यलीके, इषुमोक्षणैः—बाणक्षेपैः, सपण-बन्धं—पणबन्धपूर्वं,····दुरधिरोहाणि—अधिरोढुमशक्यानीत्यर्थः अनन्यलक्ष्यैः—अन्यैरलक्षणीयैः अन्येषामदृश्यभावेनेत्यर्थः, प्रभ्रंशनैः—पातनैः, आटविकच्छद्मना

—आटविकः आरण्यकः तस्य छद्मना कपटेन, विपिनेषु—वनेषु, विरलसैनिकानां —स्वल्पसैन्यानाम्, प्रतिरोधनैः—अवरोधनैः, अक्षद्यूतपक्षियुद्धयात्रोत्सवादिसंकुलेषु—अक्षक्रीडादिजनितास्वित्यर्थः, बलवदनुप्रवेशनैः—बलवताम् प्रवेशनैः, ...गूढोत्पादितव्यलीकेभ्यः—गूढं गुप्तमुत्पादितं व्यलीकं दुःखं येषां तेभ्यः तत्सकाशमित्यर्थः, अप्रियाणि—कटूक्तिप्रभृतीनीत्यर्थः, प्रकाशं—सर्वसमक्षम् लब्ध्वा—प्राप्य श्रुत्वेत्यर्थः, अकीर्तिगुप्तिहेतुभिः—अकीर्तेरयशसो गुप्तेर्गोपनस्य हेतुभिः कारणैः, पराक्रमैः, साक्षिषु—द्रष्टृषु, तद्, विख्याप्य—ख्यापयित्वा, परकलत्रेषु—परनारीषु, सुहृत्त्वेन—मित्रत्वेन, अभियोज्य—नियोज्य,···तत्साहसोपन्यासैः—तेषां जाराणां साहसोपन्यासैः साहसोत्पादनैः, योग्यनारीहारितानां —योग्याभिः नारीभिः हारितानाम् आकर्षितानां, संकेतेषु—संकेतस्थानेषु, प्राक्—प्रथमम्, उपनिलीय—प्रच्छन्नो भूत्वा, पश्चादभिद्रुत्य—अनुधावित्वा, अकीर्तनीयैः—निन्दनीयैः, प्रमापणैः—मारणैः, उपप्रलोभ्य—लोभं दर्शयित्वा, ··· विघ्नव्याजसाध्यैः—विघ्ना अन्तराया एव व्याजाः छलानि तत्साध्यैः तत्कृतैरित्यर्थः, व्यापादनैः—हिंसनैः, ··· प्रत्यपायनिवर्तनैः—प्रत्यपायानाम् अपायप्रतिकूलानां यथा ते न नश्यन्ति तादृशानामुपायानामिति भावः निवर्तनैः प्रतिबन्धनैः (‘प्रत्यवायनिर्वर्तनैः’ इति पाठे तु प्रत्यवायः पापं तस्य निर्वर्तनैः सम्पादनैः हिंसोत्पादनैरित्यर्थः), व्यालहस्तिनं—दुष्टगजं, कोपयित्वा—क्रोधान्धीकृत्य, लक्ष्यीकृतमुख्यमण्डलेषु—लक्ष्यीकृतेषु कोपेन तदाक्रमणाय धावता तेन हस्तिना विषयीकृतेषु मुख्यमण्डलेषु प्रधानपुरुषनिचयेषु, अपक्रमणैः—प्रेरणैः, दायाद्यर्थे —पैतृकसम्पत्त्यर्थे,··उपांशु—रहसि, हत्वा, प्रतिपक्षेषु—विरोधिषु, अयशःपातनैः—एते इमान् हतवन्त इत्येवमकीर्तिघोषणैरिति भावः,··अयथावृत्तान्—अन्यायाचरणशीलान्, अप्रकाशं—छन्नम्, अभिप्रहृत्य—व्यापाद्य,··योग्याङ्गनाभिः—अनुरूपरमणीभिः, अहर्निशं—रात्रिन्दिवम्, अभिरमय्य—विहार्य, राजयक्ष्मोत्पदानैः—क्षयरोगस्योत्पादनैः ···रसविधानकौशलैः—विषप्रदानचातुर्यैः, चिकित्सामुखेन—चिकित्साच्छलेन, आमयोपबृंहणैः—रोगवर्धनैः ··अश्मकेन्द्रप्रयुक्ताः—अश्मकदेशाधिपतिना नियुक्ताः, तीक्ष्णरसदादयः—उग्रविषप्रयोक्तृगूढपुरुषप्रभृतयः; प्रक्षपितप्रवीरम्—प्रकर्षेण क्षपिता नाशिताः प्रवीराः प्रकृष्टयोधा यस्य तादृशम्, अनन्तवर्मकटकम्—अनन्तवर्मसैन्यम्, जर्जरं—शिथिलम्, अकुर्वन्—कृतवन्तः ।

हिन्दी अनुवाद—अनुचित रूप से दिये गये दण्ड ने भय और क्रोध को उत्पन्न किया। निर्धन परिवारों में लोभ ने पैर रखा। अपमानित तेजस्वी लोग अपमान से ही जलने लगे। उन-उन कुकृत्यों के होने पर शत्रु के षड्यन्त्र काम करने लगे। उस समय व्याध-वेशधारी पुरुषों द्वारा हरिणों की अधिकता के वर्णन से (अर्थात् अधिक मृगों के होने का लोभ दिखाकर) निकलने के मार्ग से रहित तथा सूखे तृण और बाँसों के गुच्छों से पूर्ण पर्वत के मध्यमार्गों या घाटियों में (अनन्तवर्मा के सैनिकों को) घुसाकर द्वार पर अग्नि छोड़ देने से (अर्थात् घाटी के मुँह पर आग लगाकर); बाघ आदि के वध के लिए प्रोत्साहित करके उन (व्याघ्र आदि) के मुँह में डालने से; सुन्दर कुओं (के मिलने) का लोभ उत्पन्न करके दूर ले जाकर प्राण हरण करने वाली भूख-प्यास को बढ़ाने से; घास तथा झाड़-झंखाड़ से छिपे हुए तट वाली खाइयों में गिरा देने के निमित्त ऊँचे-नीचे मार्गों में दौड़ाने से; विषाक्त मुख वाली छुरियों से पैरों के काँटों को निकालने से; अनुयायियों को चारों ओर फैलाकर (अर्थात् तितर-बितर कर) अकेले किये हुए (सैनिकों) को स्वेच्छानुसार मरवाने से; मृगों के शरीर में वाण मारने के बहाने उन्हीं को वाण मारने से; होड़ करके दुर्गम पर्वत-शिखरों पर चढ़कर विना किसी के देखे उन्हें (वहाँ से) गिराने से; जंगलों में वनवासी लोगों का वेश धारण कर कुछ सैनिकों को रोक लेने से; जुए में, पक्षियों के युद्ध में तथा यात्रोत्सव आदि की भीड़ में बलवानों को प्रविष्ट कराकर तथा दूसरे (दुर्बल सैनिकों) की हिंसा करवाने से; गुप्त रूप से जिन्हें कष्ट पहुँचाया गया हो उनसे अप्रिय वचनों को सबके समक्ष सुनकर साक्षियों में उसे प्रसिद्ध करके (अर्थात् साक्षियों से उस दुर्वचन को वताकर) अपयश को छिपाने के हेतु पराक्रम दिखलाने से; दूसरों की स्त्रियों के प्रति मित्रता के नाते जार पुरुषों को नियुक्त करके पतियों का भय हटाकर जार पुरुषों द्वारा साहसिक कार्य कराने से (अर्थात् पतियों को मरवा-कर); सुन्दर स्त्रियों से आकर्षित पुरुषों को संकेत-स्थानों में पहुँचवाकर वहाँ पहले से ही छिपे हुए व्यक्तियों द्वारा आक्रमणपूर्वक बुरी तरह मरवाने से; (धन का) लोभ दिखाकर बिल में प्रवेश तथा खजानों को खोदने के कार्यों में विघ्न के बहाने उनका वध करने से; मतवाले हाथियों पर चढ़ने के लिए

प्रेरित कर विनाश से बचाने के उपायों से मुँह मोड़ने से; दुष्ट हाथी को कुपित करके लक्ष्य बनाये गये प्रधान पुरुषों के समूह में हाँक देने से; पैतृक सम्पत्ति के लिए झगड़ा करते हुए पुरुषों को एकान्त में मारकर विरोधी पक्षवालों पर दोषारोपण करने से; सामन्तों नागरिकों तथा ग्रामवासियों में से अनुचित आचरण करने वालों पर गुप्त रूप से प्रहार करके उनके शत्रुओं का नाम लगाने से; सुन्दर स्त्रियों के साथ दिनरात रमण कराकर क्षयरोग उत्पन्न करने से; वस्त्र, आभूषण माला तथा उवटन आदि में चतुरतापूर्वक विष मिलाकर चिकित्सा के बहाने रोग को बढ़ा देने से; तथा अन्य उपायों से अश्मकेन्द्र द्वारा नियुक्त, तीक्ष्ण विष आदि देने वाले (गुप्त) पुरुषों ने विनष्ट योद्धाओं वाली अनन्तवर्मा की सेना को जर्जर कर दिया।

टिप्पणी—अयथाप्रणीतः—उचित रीति से न किया हुआ या दिया हुआ (दंड)। प्र√नी+क्त=प्रणीतः। यथा प्रणीतः इति यथाप्रणीतः (सुप्सुपा स०), न यथाप्रणीतः इति अयथाप्रणीतः (न० त०)। **कृशकुटुम्बेषु**—दरिद्र परिवारों में। कृशानि कुटुम्बानि (कर्म० स०) तेषु। **परोपजापाः**—शत्रुओं के षड्यन्त्र। परेषाम् उपजापाः परोपजापाः (ष० त०)। **मृगयुवेष०**—व्याध का रूप धारण किये हुए पुरुषों द्वारा हरिणों या पशुओं की अधिकता के वर्णन से। यहाँ से 'अग्निविसर्गैः' तक का भाव यह है कि अश्मकेन्द्र के गुप्तचर व्याध का रूप धारण करके अनन्तवर्मा के सैनिकों से कहते थे कि अमुक घाटी में बहुत मृग रहते हैं। चलिए, वहाँ शिकार किया जाय। इस प्रकार लालच दे देकर वे उन्हें पर्वतों की ऐसी घाटियों में ले जाते थे, जहाँ से निकलने का कोई मार्ग नहीं रहता था और घाटियों के द्वार पर सूखी घास तथा बाँस के झुरमुट पहले से ही रखे रहते थे। उनमें आग लगाकर वे सैनिकों को जला डालते थे। **अद्रिद्रोणीः**—पर्वतों की घाटियाँ। अद्रीणां ोणयः (ष० त०), ताः। **अनपसारमार्गाः**—निकलने के मार्ग से रहित। अपसारस्य मार्गः (ष० त०), नास्ति अपसारमार्गो यासु, ताः (न० ब०)। **शुष्कतृणवंशगुल्माः**—जहाँ सूखी घास और बाँस के ढेर विद्यमान थे। वंशानां गुल्मानि इति वंशगुल्मानि (ष० त०), तृणानि च वंशगुल्मानि च इति तृणवंशगुल्मानि (द्व० स०), शुष्काणि तृणवंशगुल्मानि यासु ताः (ब० स०)। **इष्टकूप···वर्धनैः**—तात्पर्य यह है कि गुप्तचर

प्यासे सैनिकों से कहते थे कि वहाँ चलकर तुम जैसा कुआँ चाहते हो वैसा कुआँ तुम्हें मिलेगा, खूब जल पीना। इस प्रकार सुन्दर कुआँ मिलने की तृष्णा पैदाकर वे सैनिकों को बहुत दूर लिवा ले जाते थे। लंबी यात्रा करने से उन्हें ऐसे जोर की भूख और प्यास लगती थी कि उनके प्राण निकल जाते थे। **तृणगुल्म···प्रधावनैः**—भाव यह है कि झाड़-झंखाड़ तथा सूखी घासों से तट (पहाड़ों की ढाल) तथा प्रदर (गड्ढे) ढके रहते थे। गुप्तचर क्या करते थे कि सैनिकों को विषम (ऊबड़-खाबड़) मार्गों पर दौड़ने के लिए प्रेरित करते थे। जब सैनिक दौड़ते थे तो वे उन्हीं गुप्त तटों तथा प्रदरों में गिर पड़ते थे, जो तृण-गुल्मों से ढका रहा करते थे। तृणानि च गुल्मानि च इति तृणगुल्मानि (द्व० स०), तटाश्च प्रदराश्च इति तटप्रदराः (द्व० स०), तृणगुल्मैः गूढं यथा स्यात् तथा छन्नाः इति तृणगुल्मगूढच्छन्नाः (तृ० त०), तृणगुल्मगूढच्छन्नाश्च ते तटप्रदराश्च इति (कर्म० स०), तेषु पाताः (स० त०), त एव हेतवः येषां तानि (ब० स०), तैः। **विषमुखीभिः···द्धारणैः**—भाव यह है कि यदि सैनिकों के पैर में काँटे गड़ जाते तो उन्हें निकालने के लिए गुप्तचर जहर बुझी हुई छुरियाँ देते, जिनसे रुधिर का संसर्ग होने पर घाव बिगड़ जाता और वे सड़ सड़कर मर जाते थे। **विष्वग्···घातनैः**—भाव यह है कि कभी-कभी वे गुप्तचर सैनिकों को इधर-उधर जाने के लिए प्रोत्साहित कर उन्हें टोली से अलग कर देते थे। उनमें से हर एक अकेला पड़ जाता था। तब वे स्वेच्छानुसार उसका वध करवा देते थे। विष्वग् विसरः इति विष्वग्विसरः (सुप्सुपा स०), तेन विच्छिन्नाः अनुयातारः येषां ते (ब० स०), तेषां भावः तत्ता, तया। **मृगदेहापराद्धैः···मोक्षणैः**—भाव यह है कि गुप्तचर हरिणों के शरीर पर बाण छोड़ने का बहाना करते थे, परन्तु वे बाण मृग-शरीरों से लक्ष्यच्युत होकर सैनिकों को लग जाते थे। इस पर गुप्तचर चिल्लाते कि हाय! हमारा निशाना चूक गया और गलती से सैनिक को लग गया। इस प्रकार उन्होंने न जाने कितने सैनिकों को मार डाला। **सपणबन्धम्··प्रभ्रंशनैः**—भाव यह है कि कभी-कभी वे लोग बाजी लगाकर सैनिकों को दुर्गम पर्वत-शिखरों पर चढ़ा ले जाते थे और एकान्त में पाकर उन्हें ढकेल देते थे। दुरधिरोहाणि—दुःखेन अधिरोढुं योग्यानि इति दुरधिरोहाणि दुर्-अधि√रुह्+खल्। **आटावक**

···**प्रतिरोधनैः**—गुप्तचर लोग वनवासियों का वेश धारण कर छिटपुट सैनिकों को रोक लेते थे। **अक्षद्यूत····हिंसोत्पदानैः**—वे सैनिकों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देकर जुए के खेल, पक्षियों (तीतर आदि) के युद्ध तथा यात्रोत्सव में, जहाँ बड़ी भीड़ हुआ करती थी, जबर्दस्ती भेजकर हिंसा करवा देते थे। अक्षद्यूतं च पक्षियुद्धं च यात्रोत्सवश्च इति अक्षद्यूतपक्षियुद्धयात्रोत्सवाः (द्व० स०), ते आदी येषां ते—उत्सवादयः(व० स०), तेषां संकुलानि(ष० त०), तेषु। **गूढोत्पादितव्यलीकेभ्यः····पराक्रमैः**—गुप्तचर गुप्त रूप से सैनिकों को दुःख पहुँचा देते थे। जब सैनिक उसके वदले अप्रिय कार्य करते थे तब वे अप्रिय कार्य को साक्षियों (प्रजा के लोगों) को दिखाते थे। तदनन्तर यह कहकर पराक्रम या हिंसा का कार्य करते थे कि हम अपनी बदनामी हटाने तथा प्रतिष्ठा रखने के लिए ऐसा हिंसा-कार्य कर रहे हैं। **परकलत्रेषु···· न्यासैः**—दूसरों की भार्याओं के साथ सैनिकों का अनुचित सम्बन्ध यह कहकर करा देते थे कि हे सैनिको ! ये स्त्रियाँ हमारी सुहृद् हैं, आप इनसे यथेच्छ संभोग करें अथवा स्त्रियों से ही कहते थे कि ये हमारे मित्र हैं, इनके साथ खूब आनन्द लूटो। इस पर उन स्त्री-पुरुषों में अवैध सम्बन्ध हो जाने पर गुप्तचर उन स्त्रियों के पतियों से कहकर या स्वयं ही जनता में यह घोषित करके कि हम दुष्कर्म बंद कराना चाहते हैं, उन सैनिकों की हत्या करा देते थे। **योग्यनारीहारितानां···प्रमापणैः**—वञ्चना करने में निपुण स्त्रियों को यह कहकर नियुक्त करते थे कि तुम अधिक से अधिक सैनिकों को कामवासना-तृप्ति का लोभ दिलाकर अमुक स्थान पर ले चलो। हम लोग वहाँ पहले से ही छिपे रहेंगे। तुम लोगों के आ जाने पर हम आक्रमण करके उनका वध कर देंगे। इस प्रकार निन्दित तरीके से वे सैनिकों की हत्या कर देते थे। **उपप्रलोभ्य···व्यापादनैः**—'अमुक बिल या गुफा में बहुत बड़ा खजाना है। चलो उसे खोद लाओ' यह कहकर सैनिकों को वहाँ लिवा ले जाते थे और वहाँ मरवा डालने के बाद प्रजा में यह घोषित कर देते थे कि खजाना निकालने में विघ्न हो गया, जिससे वे लोग मर गए। **मत्तगज···वर्तनैः**—सैनिकों को प्रेरित करके मतवाले हाथियों पर चढ़ा देते थे। जब हाथी उन्हें मारने लगते थे तब वे उन्हें हाथियों से बचाने के उपायों से मुँह फेर लेते थे। **व्याल···अपक्रमणैः**—प्रमुख सैनिकों को पहले ही से अपना लक्ष्य

बना लेते थे। पश्चात् दुष्ट हाथीं को भड़काकर उन्हीं सैनिकों की मण्डली में हाँक देते थे। **दायाद्यर्थ…पातनैः**—जो लोग पैतृक सम्पत्ति के लिए झगड़ा करते थे, उन्हें एकान्त में मारकर विपक्षियों का नाम लगा देते थे। **रसविधानकौशलैः**—विष मिलाने की चतुरता से। रस—विष। विधान—मिश्रण। **चिकित्सामुखेन**—औषध करने के वहाने। **आमयोपबृंहणैः**—रोगों को बढ़ाने से। **तीक्ष्णरसदादयः**—उग्र विष देने वाले आदि। तीक्ष्णाः रसाः (कर्म० स०) तान् ददति इति तीक्ष्णरसदाः तीक्ष्णरस√दा+क, उपपद स०। तीक्ष्णरसदाः आदौ येषां ते तीक्ष्णरसदादयः (ब० स०)। **प्रक्षपितप्रवीरम्**—जिसके योद्धा लोग नष्ट कर दिये गये हों। प्रक्षपिताः प्रवीराः यस्मिन् तत् प्रक्षपितप्रवीरम् (ब० स०)।

अथ वसन्तभानुर्भानुवर्माणं नाम वानवास्यं प्रोत्साह्यानन्तवर्मणा व्यग्राहयत्। तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तश्चानन्तवर्मा तमभियोक्तुं बलसमुत्थानमकरोत्। सर्वसामन्तेभ्यश्चाश्मकेन्द्रः प्रागुपेत्यास्य प्रियतरोऽभूत्। अपरेऽपि सामन्ताः समगंसत। गत्वा चाभ्यर्णे नर्मदारोधसि न्यविशन्। तस्मिंश्चावसरे महासामन्तस्य कुन्तलपतेरवन्तिदेवस्यात्मनाटकीयां क्ष्मातलोर्वशीं नाम चन्द्रपालितादिभिरतिप्रशस्तनृत्यकौशलामाहूयानन्तवर्मा नृत्यमद्राक्षीत्। अतिरक्तश्च भुक्तवानिमां मधुमत्ताम्। अश्मकेन्द्रस्तु कुन्तलपतिमेकान्ते समभ्यधत्त—'प्रमत्त एष राजा कलत्राणि नः परामृशति। कियत्यवज्ञा सोढव्या। मम शतमस्ति हस्तिनाम्, पञ्चशतानि च ते। तदावां संभूय मुरलेशं वीरसेनमृचीकेशमेकवीरं कोङ्कणपतिं कुमारगुप्तं नासिक्यनाथं च नागपालमुपजपाव। ते चावश्यमस्याविनयमसहमाना अस्मन्मतेनैवोपावर्तेरन्। अयं च दानवास्यः प्रियं मे मित्रम्। अमुनैनं दुर्विनीतमग्रतो व्यतिषक्तं पृष्ठतः प्राहरेम। कोशवाहनं च विभज्य गृह्णीम इति हृष्टेन चामुनाभ्युपेते, विंशतिं वरांशुकानाम्, पञ्चविंशतिं काञ्चनकुङ्कुमकम्बलानाम्, प्राभृतीकृत्याप्तमुखेन तैः सामन्तैः संमन्त्र्य तानपि स्वमतावस्थापयत्। उत्तरेद्युस्तेषां सामन्तानां वानवास्यस्य च अनन्तवर्मा नयद्वेषादामिषत्वमगच्छत्। वसन्तभानुश्च तत्कोशवाहनमवशीर्णमात्माधिष्ठितमेव कृत्वा 'यथाप्रयासं यथाबलं च विभज्य गृह्णीत। युष्मदनुज्ञया येन केनचिदंशेनाहं तुष्यामि' इति शाठ्यात्सर्वानुवर्ती, तेनैवामिषेण निमित्तीकृतेनो-

त्पादितकलहः सर्वसामन्तानध्वंसयत्। तदीयं च सर्वस्वं स्वयमेवाग्रसत्। वानवास्यं केनचिदंशेनानुगृह्य प्रत्यावृत्य सर्वमनन्तवर्मराज्यमात्मसादकरोत्।

संस्कृत व्याख्या—अथ—अनन्तरम् वसन्तभानुः—अश्मकेन्द्रः,…वानवास्यं—वनप्रदेशाधिपतिं,…व्यग्राहयत्—अयोधयत्, तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तः—तेन वानवास्येन परामृष्टः गृहीतः राष्ट्रस्य स्वराज्यस्य पर्यन्तः प्रान्तभागो यस्य तथाभूतः, अनन्तवर्मा, तम्—भानुवर्माणम्,…बलसमुत्थानं—सैन्योद्योगम्,…प्राक्—पूर्वम्, उपेत्य—समीपमागत्य, अस्य—अनन्तवर्मणः प्रियतरोऽभूत्।…समगंसत—मिलिता अभवन्। गत्वा, अभ्यण—निकटवर्तिनि, नर्मदारोधसि—नर्मदातीरे, …महासामन्तस्य—प्रधानसामन्तस्य, आत्मनाटकीयां—स्वनर्तकीम्, क्ष्मातलोर्वशीं—पृथिवीतलोर्वशीं परमसुन्दरीमिति भावः, …अतिरिक्तः—अत्यासक्तः, …मधुमत्तां—मद्यपानप्रमत्ताम्। …कलत्राणि—दाराः, परामृशति—स्पृशति बलात्करोतीत्यर्थः, …सम्भूय—मिलित्वा, …उपजपाव—भेदयाव। ते—वीरसेनादयः, अस्य—अनन्तवर्मणः, अविनयं—दुराचरणम्, …उपावर्तेरन्—तिष्ठेयुः। अमुना—वानवास्येन, एनम्—अनन्तवर्माणम्, …व्यतिषक्तं—मिलितम् अभियुक्तमिति यावत्, …अमुना—कुन्तलपतिना, अभ्युपेते—स्वीकृते, …वरांशुकानाम्—उत्कृष्टवसनानाम्, …काञ्चनकुङ्कुमकम्बलानाम्—काञ्चनवर्णकुङ्कुमसंवासितकम्बलानाम्, प्राभृतीकृत्य—उपायनीकृत्य, आप्तमुखेन—विश्वस्तपुरुषद्वारा, तैः सामन्तैः—वीरसेनप्रमुखैरित्यर्थः, …स्वमतौ—स्वाभिमते, …उत्तरेद्युः—परस्मिन् दिने, …नयद्वेषात्—दुर्नयात्, आमिषत्वम्—भोग्यवस्तुत्वम्, …तत्कोशवाहनं—तस्य अनन्तवर्मणः कोशवाहनं धनरत्नगजाश्वादिकम् अवशीर्णं—विध्वस्तम्, आत्माधिष्ठितं—स्वायत्तं, …यथाप्रयासं—स्वस्वचेष्टानुरूपम्, यथाबलं—स्वस्वशक्त्यनुसारेण, …शाठ्यात्—कापट्यात्, सर्वानुवर्ती—सर्वमनोरञ्जनकारी, तेनैव, आमिषेण—भोग्यद्रव्येण, …अध्वंसयत्—अनाशयत्। तदीयं—तत्तत्सामन्तसम्बन्धि, …आत्मसात्—स्वहस्तगतम्, अकरोत्।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद वसन्तभानु ने भानुवर्मा नामक वनेचरपति को उभाड़कर अनन्तवर्मा से लड़ा दिया। भानुवर्मा द्वारा राष्ट्र के सीमावर्ती प्रदेशों के आक्रान्त हो जाने पर अनन्तवर्मा उससे युद्ध करने के लिए सैन्य-

संगठन करने लगा। अश्मक-पति वसन्तभानु सभी सामन्तों से पहले आकर अनन्तवर्मा का अधिक प्रिय (प्रिय पात्र) बन गया। दूसरे सामन्त भी (उससे) मिले। उन लोगों ने जाकर समीपवर्ती नर्मदा नदी के तट पर पड़ाव डाला। उस समय महासामन्त और कुन्तल देश के अधिपति अवन्तिदेव की निजी नर्तकी को, जो पृथ्वी-तल की उर्वशी कही जाती थी और चन्द्रपालित आदि ने जिसकी नृत्यकला की बड़ी प्रशंसा की थी, बुलवा कर अनन्तवर्मा ने नृत्य देखा, और (उसमें) अत्यन्त आसक्त होकर (अनन्तवर्मा ने) मद्य पीकर मत्त बनी हुई उस (नर्तकी) के साथ संभोग भी किया।

अश्मकाधीश (वसन्तभानु) ने कुन्तलपति (अवन्तिदेव) से एकान्त में कहा—'यह मतवाला राजा हमारी स्त्रियों से बलात्कार करता है। कितना अपमान सहा जाय? मेरे पास सौ हाथी हैं और तुम्हारे पास पाँच सौ। इसलिए हम दोनों मुरलपति वीरसेन, ऋचीकपति एकवीर, कोङ्कणपति कुमारगुप्त और सासिक्यपति नागपाल को फोड़ लें। वे लोग अनन्तवर्मा की धृष्टता (या अत्याचार) को सहन न करते हुए अवश्य ही हमारी राय से चलेंगे। यह वनवासियों का स्वामी मेरा प्रिय मित्र है। उसके द्वारा इस दुर्विनीत (अनन्तवर्मा) को आगे से रोककर पीछे से हम लोग चढ़ाई कर दें। और इसके खजाने तथा सेना को बाँटकर ले लें'।

जब अवन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक यह बात स्वीकार कर ली तब विश्वस्त पुरुष द्वारा बीस उत्तम वस्त्रों तथा पचीस सुनहले एवं केसर से सुवासित कम्बलों का उपहार भेजकर उन सामन्तों से परामर्श करके उन्हें भी अपने मत में मिला लिया। दूसरे दिन राजनीति से द्वेष रखने (या दुर्नीति) के कारण अनन्तवर्मा उन सामन्तों तथा वनेचरपति का शिकार बन गया (अर्थात् उनके हाथों मारा गया)। वसन्तभानु ने उसके नष्ट-भ्रष्ट खजाने तथा सेना को अपने अधीन करके 'आप लोग अपने परिश्रम तथा अपनी सेना के अनुसार बाँटकर ले लीजिए। आपकी आज्ञा से मैं थोड़े-बहुत अंश से सन्तुष्ट हूँ।' इस प्रकार धूर्तता से सबका अनुकूल बनकर उसी भोग्य वस्तु (धन) के कारण सब में झगड़ा पैदा कर सकल सामन्तों को नष्ट कर दिया। और उनका सर्वस्व स्वयं ही हड़प लिया। वनेचरपति

को थोड़े से अंश से अनुगृहीत कर, लौटकर अनन्तवर्मा के सम्पूर्ण राज्य को अपने हाथ में कर लिया।

टिप्पणी—**वानवास्यम्**—वनप्रदेश या वनवासियों का स्वामी। वने वसन्ति इति वनवासिनः। ते अस्य सन्तीति वानवास्यः वनवासिन्+ण्य, तम्। **व्यग्राहयत्**—विरोध करा दिया। वि√ग्रह्+णिच्+लङ्। **तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तः**—जिसके राष्ट्र का सीमाभाग उसी (भानुवर्मा) के द्वारा दबोच लिया गया था। राष्ट्रस्य पर्यन्तः (ष० त०)। तेन परामृष्टः (तृ० त०), तत्परामृष्टो राष्ट्रपर्यन्तो यस्य स तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तः (ब० स०)। **अभियोक्तुम्**—आक्रमण करने के लिए। अभि√युज्+तुमुन्। **बलसमुत्थानम्**—सेना एकत्रित करना। **उपेत्य**—समीप जाकर। **समगंसत**—आकर मिले। सम्पूर्वक गम् धातु का प्रयोग 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' सूत्र के बल से आत्मनेपद में होता है। **अभ्यर्णे**—समीपवर्ती। अभि√अर्द्+क्त। **आत्मनाटकीयाम्**—अपनी नर्तकी। आत्मनः नाटकीया (ष० त०), ताम्। **क्ष्मातलोर्वशीम्**—पृथ्वी-तल की उर्वशी। क्ष्मायाः तलम् इति क्ष्मातलम् (ष० त०), क्ष्मातलस्य क्ष्मातले वा उर्वशी इति क्ष्मातलोर्वशी (ष० त० वा स० त०)। **अतिप्रशस्तनृत्यकौशलाम्**—जिसके नाचने की निपुणता खब प्रशंसित हो चुकी थी। नृत्यस्य कौशलम् (ष० त०), अतिप्रशस्तम् नृत्यकौशलं यस्याः सा अतिप्रशस्तनृत्यकौशला (ब० स०), ताम्। **मधुमत्ताम्**—मद्य पीने के कारण नशे में चूर। मधुना मत्ता इति मधुमत्ता (तृ० त०), ताम्। **समभ्यधत्त**—कहा। सम्—अभि √धा+लङ्—त। **परामृशति**—छूता है, अपमानित करता है। **सम्भूय**—मिल कर। सम्√भू+क्त्वा—ल्यप्। **उपजपाव**—फोड़ लें, अपनी ओर मिला लें। **अस्मन्मतेन**—हमारे मत से। **उपावर्तेरन्**—चलेंगे, बरतेंगे। **व्यतिषक्तम्**—आक्रान्त या अवरुद्ध। **कोशवाहनम्**—खजाना और सेना को। कोशश्च वाहनं च इत्यनयोः समाहारः इति कोशवाहनम् (द्व० स०)। **गृह्णीम**—ले लेंगे। यहाँ भविष्यत् काल के अर्थ में लट् लकार हुआ है। **वरांशुकानाम्**—सुन्दर महीन वस्त्रों का। **काञ्चनकुङ्कुमकम्बलानाम्**—सुनहले तथा केसर की सुगन्धि से सुगन्धित। कुङ्कुमवासितानि कम्बलानि (मध्य० स०), काञ्चनवर्णानि कुङ्कुमकम्बलानि (मध्य० स०), तेषाम्। **प्राभृतीकृत्य**—उपहार के तौर पर

भेजकर। प्राभृत—उपहार, भेंट। न प्राभृतम् अप्रातभृम् अप्राभृतम् प्राभृतं कृत्वा इति प्राभृतीकृत्य प्राभृत+च्वि, ईत्व√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **आप्तमुखेन**—विश्वासपात्र व्यक्ति के द्वारा। **उत्तरेद्युः**—दूसरे दिन। उत्तर+एद्युस्। यह अव्यय है। **आमिषत्वम्**—भोग्य वस्तु की अवस्था को या शिकार को या मृत्यु को। 'आमिषं पुंनपुंसकम्। भोग्यवस्तुनि सम्भोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च' इति मेदिनी। **अवशीर्णम्**—विध्वस्त, छिन्न-भिन्न। अव√शॄ+क्त। **आत्माधिष्ठितम्**—अपने अधीन। **यथाप्रयासम्**—उद्योग या प्रयत्न के अनुसार। प्रयासम् अनतिक्रम्य इति यथाप्रयासम् (अव्य० स०)। **शाठ्यात्**—धूर्तता से। **सर्वानुवर्ती**—सबका अनुगामी, सब के अनुसार चलने वाला। सर्वान् अनुवर्तते इति सर्व-–अनु√वृत्+णिनि। **निमित्तीकृतेन**—निमित्त बने हुए। अनिमित्तं निमित्तं कृतम् इति निमित्त+च्वि, ईत्व√कृ+क्त=निमित्तीकृतम्, तेन। यह 'आमिषेण' का विशेषण है। **उत्पादितकलहः**—जिसने झगड़ा लगा दिया हो। उत्पादितः कलहः येन स उत्पादितकलहः (ब० स०)। **प्रत्यावृत्य**—(अपने देश को) लौटकर। प्रति—आ√वृत्+क्त्वा—ल्यप्। **आत्मसात्**—अधीनस्थ। आत्मनः अधीनम् इति आत्मसात् आत्मन्+साति।

अस्मिश्चान्तरे मन्त्रिवृद्धो वसुरक्षितः कैश्चिन्मौलैः संभूय बालमेनं भास्करवर्माणम्, अस्यैव ज्यायसीं भगिनीं त्रयोदशवर्षां मञ्जुवादिनीम्, अनयोश्च मातरं महादेवीं वसुन्धरामादायापसर्पन्नापदोऽस्या भावितया दाहज्वरेण देहमजहात्। अस्मादृशैर्मित्रैस्तु नीत्वा माहिष्मतीं भर्तृद्वैमातुराय भ्रात्रे मित्रवर्मणे सापत्या देवी दर्शिताभूत्। तां चार्यामनार्योऽसावन्यथाऽभ्यमन्यत। निर्भर्त्सितश्च तया 'सुतमियमखण्डचारित्रा राज्यार्हं चिकीर्षति' इति नैर्घृण्यात्तमेनं बालमजिघांसीत्। इदं तु ज्ञात्वा देव्याहमाज्ञप्तः—'तात, नालीजङ्घ, जीवतानेनार्भकेण यत्र क्वचिदवधाय जीव। जीवेयं चेदहमप्येनमनुसरिष्यामि। ज्ञापय मां क्षेमप्रवृत्तः स्ववार्ताम्' इति। अहं तु संकुले राजकुले कथञ्चिदेनं निर्गमय्य विन्ध्याटवीं व्यगाहिषि। पादचारिणं चैनमाश्वासयितुं घोषे क्वचिदहानि कानिचिद्विश्रमय्य, तत्रापि राजपुरुषसम्पातभीते दूराध्वमपासरम्। तत्रास्य दारुणपिपासापीडितस्य वारिदातुकामः कूपेऽस्मिन्नपभ्रश्य पतितस्त्वयैवमनुगृहीतः। त्वमेवास्यातः शरणमेधि विशरणस्य राजसूनोः' इत्यञ्जलिमबध्नात्।

संस्कृत व्याख्या—····मौलैः—कुलक्रमागतभृत्यैः, संभूय—मिलित्वा,···· ज्यायसीं—ज्येष्ठाम्, ····मञ्जुवादिनीं—तन्नामधेयाम्, ····वसुन्धरां—तदाख्याम्, आदाय—गृहीत्वा, अपसर्पन्—पलायमानः, ····भावितया—अवश्यम्भावित्वेन,···· अजहात्—अत्यजत्। ····माहिष्मतीं—तदाख्यां नगरीम्, भर्तृद्वैमातुराय—भर्तुः पत्युः द्वैमातुराय वैमात्रेयाय, ····सापत्या—सन्तानसहिता, ····आर्यां—सुचरित्राम्, ····असौ—मित्रवर्मा, अन्यथा—दुश्चरित्रामित्यर्थः, अभ्यमन्यत—मनःस्थामकरोत् रिरंसया चारित्रनाशाय चकमे इत्यर्थः। अखण्डचारित्रा—अभ्रष्टचारित्रा सतीत्यर्थः, राज्यार्हं—राज्याधिकारिणम्, चिकीर्षति—कर्तुमिच्छति, इति—हेतोः, नैर्घृण्यात्—निष्करुणत्वात्, ····अजिघांसीत्—हन्तुमैच्छत्।···· अहम्—अस्येतिवृत्तस्य वक्ता वृद्धो नालीजङ्घनामा, ····अर्भकेण—वालकेन, ····अवधाय—व्यवहितो भूत्वा, जीव—प्राणान् रक्ष।····जीवेयं—प्राण्याम्, चेत्—यदि, (तर्हि) एनम्, अनुसरिष्यामि—अनुगमिष्यामि। ज्ञापय—निवेदय, मां, क्षेमप्रवृत्तः—कुशलप्रस्थितः, स्ववार्तां—निजवृत्तान्तम्, ····संकुले—जनाकीर्णे,····व्यगाहिषि—प्राविक्षम्।····आश्वासयितुं—सान्त्वयितुं, घोषे—आभीरपल्ल्याम्,····विश्रमय्य—विश्रामं कारयित्वा, तत्रापि—घोषेऽपि, राजपुरुषसंपातभीतः—राजपुरुषाणां सम्पातात् आगमनात् भीतः शङ्कितः, दूराध्वम्—दूरमार्गम् अपासरम्—पलायितः।····दारुणपिपासापीडितस्य—अत्यन्तमसह्यया तृषा व्याकुलस्य, वारि—जलं,····अपभ्रश्य—स्खलित्वा····, त्वया—विश्रुतेनेत्यर्थः, ····अतः—अस्मात् परम्, त्वमेव, विशरणस्य—शरणरहितस्य, अस्य—भास्करवर्मणः, शरणम्—आश्रयः, एधि—भव।

हिन्दी अनुवाद—इस बीच मन्त्रियों में वृद्ध वसुरक्षित ने कुछ पुराने सेवकों (या मन्त्रियों) के साथ एकत्र होकर इस बालक भास्करवर्मा को, तेरह वर्ष की अवस्था वाली, इसी की बड़ी बहन मञ्जुवादिनी को तथा इन दोनों की माता महारानी वसुन्धरा को लेकर भागते हुए, इस अवश्यम्भावी विपत्ति के कारण दाहज्वर से शरीर छोड़ दिया। (तब) हमारे जैसे मित्रों ने माहिष्मती नगरी में ले जाकर पति के वैमात्रेय भाई मित्रवर्मा के हाथ में, सन्तान सहित महारानी को सौंप दिया। (किन्तु) उस दुष्ट ने सच्चरित्रा महारानी को दूसरे प्रकार की (असच्चरित्रा) समझा। जब महारानी ने उसे झिड़का तब

उसने 'यह साध्वी अपने पुत्र को राज्य के योग्य बनाना चाहती है' ऐसा सोचकर निर्दयता से इस बालक को मारना चाहा। यह जानकर महारानी ने मुझे आज्ञा दी--'पूज्य नालीजंघ! जीवित रहते हुए इस बालक के साथ तुम कहीं छिपकर जीओ। यदि मैं जीवित रही तो मैं भी इसका अनुसरण करूँगी। (इसके) कल्याण में लगे हुए तुम मुझे अपना समाचार देते रहना'।

मैं लोगों की भीड़ से प्रपूर्ण राजकुल से किसी तरह इसको निकालकर विन्ध्याचल के जंगल में प्रविष्ट हुआ। पैदल चलने वाले इस (बालक) को आश्वस्त करने के लिए किसी घोष (अहीरों के गाँव) में कुछ दिन विश्राम कराकर वहाँ भी राजपुरुषों के आ जाने के भय से दूरवर्ती मार्ग में निकल गया। वहाँ भयंकर प्यास से पीड़ित इस (कुमार) को जल देने का इच्छुक मैं इस कुएँ में लड़खड़ाकर गिर जाने पर तुम्हारे द्वारा इस प्रकार अनुगृहीत हुआ। अतः पर इस अनाथ राजकुमार के तुम्हीं रक्षक हो' इतना कहकर उसने हाथ जोड़ा (प्रणाम किया)।

टिप्पणी—मौलैः—मूल से अर्थात् बाप-दादों के समय से चले आते हुए सेवकों के साथ। मूलात् आगताः मौलाः मूल+अण्, तैः। **ज्यायसीम्**—बड़ी बहन। इयम् अनयोः अतिशयेन वृद्धा अधिकतरवयस्का इति ज्यायसी वृद्ध+ ईयसुन्, ज्यादेश, ङीप्, ताम्। **महादेवीम्**—बड़ी रानी, महारानी। महती चासौ देवी महादेवी (कर्म० स०), ताम्। **अपसर्पन्**—भागता हुआ। अप√ सृप्+लट्—शतृ। **भावितया**—भविष्य में होने वाली अर्थात् अवश्यम्भावी होने के कारण। **दाहज्वरेण**—जलन वाले बुखार से। दाहयुक्तः ज्वरः (मध्य० स०), तेन। **अजहात्**—छोड़ दिया। √हा (जुहोत्यादि)+लङ— तिप्। **भर्तृद्वैमातुराय**—स्वामी के सौतेले भाई, देवर। द्वयोः मात्रोः अपत्यं पुमान् इति द्वैमातुरः द्विमातृ+अण् उदादेशश्च 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' इति सूत्रेण। तस्मै। **आर्याम्**—शुद्धचारित्रा, सती को। **अनार्यः**—असभ्य, दुष्ट। **निर्भर्त्सितः**—डाँटा-फटकारा गया। निर्√भर्त्स्+क्त। **अखण्डचारित्रा**— सदाचारिणी। न विद्यते खण्डो यस्य तत् अखण्डम् (न० ब०), अखण्डं चारित्रं यस्याः सा अखण्डचारित्रा (ब० स०)। चरित्रमेव चारित्रम् चरित्र+अण् स्वार्थे। **राज्यार्हम्**—राज्य के योग्य राजा। राज्यम् अर्हति इति राज्यार्हः

राज्य√अर्ह्+अच्, तम्। **चिकीर्षति**—करना चाहती है। कर्तुम् इच्छति इति चिकीर्षति√कृ+सन्+लट्—तिप्। **नैर्घृण्यात्**—निर्दयता से। निर्गता घृणा यस्मात् स निर्घृणः (प्रा० ब० स०), निर्घृणस्य भावः नैर्घृण्यम् निर्घृण+ष्यञ्, तस्मात्। **अजिघांसीत्**—मारना चाहा।√हन्+सन्+लुङ—तिप्। **आज्ञप्तः**—आदेश दिया गया। आ√ज्ञा+णिच् पुक्+क्त। **अर्भकेण**—बच्चे के साथ। **अवधाय**—छिपकर। अव√धा+क्त्वा—ल्यप्। **ज्ञापय**—बताना, सूचित करना। √ज्ञा+णिच्+लोट्—सिप्। **क्षेमप्रवृत्तः**—कल्याण करने में तत्पर। क्षेमे प्रवृत्तः क्षेमप्रवृत्तः (स० त०)। **स्ववार्ताम्**—अपना समाचार। **संकुले**—भीड़-भाड़ से भरे हुए। **निर्गमय्य**—निकालकर। निर्√गम्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **व्यगाहिषि**—घुस गया। वि√गाह्+लुङ—इट्। **पादचारिणम्**—पैदल चलने वाले। पादाभ्यां चरतीति पादचारी पाद√चर्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये, तम्। **आश्वासयितुम्**—ढाढस देने के लिए। आ√श्वस्+णिच्+तुमुन्। **घोषे**—अहीरों की बस्ती में। 'घोष आभीरपल्ली स्यात्' इत्यमरः। **विश्रमय्य**—विश्राम कराकर। वि√श्रम्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **राजपुरुष-संपातभीतः**—राजा के कर्मचारियों के आ जाने की शंका से भयभीत। राज्ञः पुरुषः, तस्य संपातः (ष० त०), तस्मात् भीतः (पं० त०)। **दारुणपिपासा-पीडितस्य**—असह्य प्यास से व्याकुल। दारुणा पिपासा (कर्म० स०), तया पीडितः (तृ० त०), तस्य। **शरणम्**—रक्षक, आश्रय। **विशरणस्य**—रक्षक-रहित, अनाथ। विगतं शरणं यस्य स विशरणः (ब० स०), तस्य।

'किमीया जात्यास्य माता' इत्यनुयुक्ते मयामुनोक्तम्—'पाटलिपुत्रस्य वणिजो वैश्रवणस्य दुहितरि सागरदत्तायां कोसलेन्द्रात्कुसुमधन्वनोऽस्य माता' इति। 'यद्येवमेतन्मातुर्मत्पितुश्चैको मातामहः' इति सस्नेहं तमहं सस्वजे। वृद्धेनोक्तम्—'सिन्धुदत्तपुत्राणां कतमस्ते पिता' इति। 'सुश्रुतः' इत्युक्ते सोऽत्यहृष्यत्। अहं तु 'तं नयावलिप्तमश्मकं नयेनैवोन्मूल्य बालमेनं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठापयेयम्' इति प्रतिज्ञाय कथमस्यैनां क्षुधं क्षपयेयम्' इत्यचिन्तयम्। तावदापतितौ च कस्यापि व्याधस्य त्रीनिषूनतीत्य द्वौ मृगौ स च व्याधः। तस्य हस्तादवशिष्टमिषुद्वयं कोदण्डं चाक्षिप्यावधिषम्। एकश्च सपत्राकृतोऽन्यश्च निष्पत्राकृतोऽपतत्। तं चैकं मृगं दत्त्वा मृगयवे, अन्यस्यापलोमत्वचः क्लोमा-

पोह्य, निष्कुलाकृत्य विकृत्योर्वङ्घ्रिग्रीवादीनि शूलाकृत्य दावाङ्गारेषु, तप्तेनामिषेण तयोरात्मनश्च क्षुधमतार्षम्। एतस्मिन् कर्मणि मत्सौष्ठवेनातिहृष्टं किरातमस्मि पृष्टवान्—'अपि जानासि माहिष्मतीवृत्तान्तम्' इति। असावाचष्ट—'तत्र व्याघ्रत्वचो दृतीश्च विक्रीयाद्यैवागतः किं न जानामि। प्रचण्डवर्मा नाम चण्डवर्मानुजो मित्रवर्मदुहितरं मञ्जुवादिनीं विलिप्सुरभ्येतीति तेनोत्सवोत्तरा पुरी' इति।

संस्कृत व्याख्या—किमीया जात्या—कस्येयमिति किमीया कस्या जातेरुत्पन्नेत्यर्थः⋯इति, अनुयुक्ते—पृष्टे, मया—विश्रुतेनेत्यर्थः, अमुना—नालीजङ्घेन, ⋯तम्—बालकम्, सस्वजे—आलिङ्गितवान्। सिन्धुदत्तपुत्राणां०—सिन्धुदत्तस्य बहवः पुत्रास्तेषु तव पिता कतमः किंनामक इति।⋯नयावलिप्तं—नीतिगर्वितम्, तम्—अश्मकेन्द्रम्, नयेनैव—नीत्यैव,⋯पित्र्ये पदे—पितुः स्थाने, ⋯अस्य—बालकस्य एनां, क्षुधं—क्षुधाम्, क्षपयेयम्—नाशयेयम्,⋯तावत्—एतस्मिन्नन्तरे, ⋯त्रीन् इषून्—बाणत्रयमित्यर्थः, अतीत्य—उल्लङ्घ्य, ⋯कोदण्डं—धनुः, आक्षिप्य—आकृष्य, अवधिषम्—प्राहरम्। एकश्च, सपत्राकृतः—सह पत्रेण पक्षेण इति सपत्रः तथाकृतः सपुङ्खशरप्रवेशनेनातिव्यथितः कृतः, अन्यश्च, निष्पत्राकृतः—तद्रहितो विद्धः सपुङ्खस्य शरस्य अपरपार्श्वतो निर्गमनेनातिव्यथितः कृतः,⋯मृगयवे—व्याधाय, ⋯अपलोमत्वचः—त्यक्तलोमचर्मणः, क्लोम—तिलकं पिपासास्थानमित्यर्थः, अपोह्य—निःसार्य, निष्कुलाकृत्य—शिरास्थ्यादीनि अभ्यन्तरात् निष्कोष्येत्यर्थः, विकृत्य—विच्छिद्य, ⋯शूलाकृत्य—शूलेन पाचयित्वा, दावाङ्गारेषु—वनाग्निषु, तप्तेन—उष्णेन, आमिषेण—मांसेन, तयोः—बालवृद्धयोः, आत्मनः—स्वस्य, क्षुधम्, अतार्षम्—न्यवारयम्।⋯मत्सौष्ठवेन—मम पाटवेन दक्षतयत्यर्थः, ⋯किरातं—व्याधम्,⋯व्याघ्रत्वचः—व्याघ्रचर्माणि, दृतीः—चर्मपुटकानि,⋯विलिप्सुः—विशेषेण लब्धुमिच्छुः, अभ्येति—आगच्छति,⋯उत्सवोत्तरा—उत्सवभूयिष्ठा, पुरी—नगरी।

हिन्दी अनुवाद—'इसकी माता किस जाति की है'—यह मेरे द्वारा पूछे जाने पर उसने कहा—'पाटलिपुत्र के वैश्रवण नामक बनिये की पुत्री सागरदत्ता में कोसलपति कुसुमधन्वा से इसकी माता उत्पन्न हुई है'। 'यदि ऐसी बात है

तो इसकी माता और मेरे पिता के मातामह (नाना) एक ही थे, ऐसा कहकर मैंने स्नेहपूर्वक उसका आलिंगन किया।

वृद्ध ने कहा—'सिन्धुदत्त के पुत्रों में से कौन तुम्हारे पिता थे?' 'सुश्रुत' यह कहने पर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मैं तो 'नीतिगर्वित अश्मकदेशाधिपति को नीति के द्वारा ही उखाड़कर इस बालक को (इसके) पिता के स्थान पर स्थापित करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके 'कैसे इसकी भूख को मिटाऊँगा' यह सोचने लगा। तब तक, किसी व्याध के तीन बाणों का अतिक्रमण करके दो हरिण तथा वह व्याध आ पहुँचे। उसके हाथ से, बचे हुए दो बाण तथा धनुष खींच-कर मैंने (दोनों हरिणों को) मार डाला। (उनमें से) एक तो पंख सहित बाण के प्रवेश से और दूसरा पंख सहित बाण के (हरिण के) दोनों पार्श्वों को छेदकर निकल जाने से व्यथित होकर गिर पड़े। उनमें से एक (हरिण) व्याध को देकर दूसरे (हरिण) के रोएँ, चमड़े, क्लोम (हृदय के दाहिने भाग में रहने वाला=पिपासा का उत्पत्तिस्थान) तथा अँतड़ी आदि निकालकर जाँघ, पैर तथा गरदन आदि को काटकर लोहे के छड़ पर रखकर दावाग्नि में भून-कर गर्म मांस से उन दोनों (नालीजंघ तथा भास्करवर्मा) की तथा अपनी क्षुधा को शान्त किया। इस कार्य में मेरी दक्षता से अत्यन्त प्रसन्न उस व्याध से मैंने पूछा—'क्या माहिष्मती का समाचार जानते हो?' उसने कहा—'वहाँ व्याघ्रचर्म तथा मशक (चमड़े के थैले) बेचकर आज ही आया हूँ; क्यों नहीं जानता?' चण्डवर्मा का छोटा भाई प्रचण्डवर्मा मित्रवर्मा की पुत्री मञ्जु-वादिनी को विशेष रूप से प्राप्त करने की इच्छा से आ रहा है। इस कारण नगरी उत्सवों से प्रपूर्ण है।

टिप्पणी—**किमीया**—कस्य इयम् इति किम्+छ—ईय+टाप्। **अनुयुक्ते**—पूछे जाने पर। अनु√युज्+क्त। किसकी। **पाटलिपुत्रस्य**—पाटलिपुत्र नामक नगर के। आधुनिक पटना नगरी का प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था। **दुहितरि**—पुत्री। दोग्धि विवाहादिकाले धनादिकमाकृष्य गृह्णातीति, यद्वा दोग्धि गाः इति, पुराकले कन्यासु एव गोदोहनभारस्थितेस्तथात्वम्।√दुह्+तृच्, निपातनाद् गुणाभावः। **सस्वजे**—गले लगाया, आलिंगन किया। **कतमः**—कौन। किम्+डतमच्। **नयावलिप्तम्**—राजनीति से गर्वित। नयेन

अवलिप्तः नयावलिप्तः (तृ० त०), तम्। **उन्मूल्य**—उखाड़कर, ध्वस्त करके। उद्√मूल+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **पित्र्ये पदे**—पिता के स्थान पर, राजगद्दी पर। पितुः इदम् पित्र्यम् पितृ+यत्। **प्रतिष्ठापयेयम्**—प्रतिष्ठित करूँ, बैठाऊँ। प्रति√स्था+णिच्, पुक्+विधिलिङ—मिप्। **क्षपयेयम्**—निवारण करूँ। √क्षप्+णिच्+विधिलिङ—मिप्। **इषून्**—वाणों को। **अवशिष्टम्**—बचे हुए। अव√शिष्+क्त। **कोदण्डम्**—धनुष को। **आक्षिप्य**—खींचकर या छीनकर। **सपत्राकृतः**—पंख सहित बाण से बेध दिया अर्थात् मृग के शरीर में बाण ऊपर लगे हुए पंख तक घुस गया। सह पत्रेण कृतः इति सपत्राकृतः सपत्र+डाच्√कृ+क्त। 'सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने' सूत्र से यहाँ तथा अगले प्रयोग में भी डच् हुआ है। **निष्पत्राकृतः**—पंख रहित बाण से बेध दिया अर्थात् पंख समेत बाण के शरीर के दूसरे पार निकल गया। **मृगयवे**—व्याध, बहेलिये को। **अपलोमत्वचः**—जिसके रोएँ तथा चमड़ा निकाल लिये गये हों। लोमानि च त्वक् च इति लोमत्वचौ (द्व० स०), अपगते लोमत्वचौ यस्य स अपलोमत्वक् (प्रा० व० स०), तस्य। **क्लोम**—फुप्फुस, फेफड़ा या पिपासास्थान। भावप्रकाश में लिखा है—'अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति। जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम्॥' **अपोह्य**—हटाकर। अप√वह्+क्त्वा—ल्यप्। **निष्कुलाकृत्य**—नाड़ी, अँतड़ी आदि को भीतर से निकालकर। निर्गतं कुलम् अन्तरवयवानां समूहः यस्मात् तथा कृतम्। निष्कुल +डाच् 'निष्कुलान्निष्कोषणे, इत्यनेन,√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **ऊर्वङ्घ्रिग्रीवादीनि**—जंघा, पैर और गरदन आदि को। ऊरू च अङ्घ्री च ग्रीवा च इति ऊर्वङ्घ्रि-ग्रीवाः (द्व० स०), ऊर्वङ्घ्रिग्रीवाः आदौ येषां तानि ऊर्वङ्घ्रिग्रीवादीनि (ब० स०)। **विकृत्य**—काट कूटकर। वि√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **दावाङ्गारेषु**—दावाग्नि, जंगल की आग में। दावस्य अङ्गाराः (ष० त०), तेषु। **शूलाकृत्य**—शूल से पकाकर अर्थात् लोहे के छड़ पर रखकर तथा भूनकर। शूल+डाच् 'शूलात् पाके' इत्यनेन,√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **आमिषेण**—मांस से। **अतार्षम्**—पार किया, निवारण किया।√तृ+लुङ—मिप्। **मत्सौष्ठवेन**—मेरी निपुणता से। मम सौष्ठवम् (ष० त०), तेन। **किरातम्**—बहेलिए को। **दृतीः**—चमड़े के थैलों, मशकों को। **विलिप्सुः**—विशेष रूप से प्राप्त करने का

इच्छुक। लब्धुमिच्छुः लिप्सुः√लभ्+सन्+उ, विशेषेण लिप्सुः विलिप्सुः (प्रा० स०)। उत्सवोत्तरा—उत्सवपूर्ण। उत्सवेन उत्तरा उत्सवोत्तरा (तृ० त०)।

अथ कर्णे जीर्णमब्रवम्—'धूर्तो मित्रवर्मा दुहितरि सम्यक्प्रतिपत्त्या मातरं विश्वास्य तन्मुखेन प्रत्याकृष्य बालकं जिघांसति। तत्प्रतिगत्य कुशलमस्य मद्वार्तां च देव्यै रहो निवेद्य पुनः कुमारः शार्दूलभक्षित इति प्रकाशमाक्रोशनं कार्यम्। सदुर्मतिरन्तः प्रीतो बहिर्दुःखं दर्शयन्देवीमनुनेष्यति। पुनस्तया त्वन्मुखेन स वाच्यः—'यदपेक्षया त्वन्मतमत्यक्रमिषं सोऽपि बालः पापेन मे परलोकमगात्। अद्य तु त्वदादेशकारिण्येवाहम्' इति। स तथोक्तः प्रीतिं प्रतिपद्याभिपत्स्यते। पुनरनेन वत्सनाभनाम्ना महाविषेण संनीय तोयं तत्र मालां मज्जयित्वा तया स वक्षसि मुखे च हन्तव्यः। 'स एवायमसिप्रहारः पापीयसस्तव भवतु यद्यस्मि पतिव्रता'। पुनरनेनागदेन संगमितेऽम्भसि तां मालां मज्जयित्वा स्वदुहित्रे देया। मृते तु तस्मिंस्तस्यां च निर्विकारायां सत्याम्, सतीत्येवैनां प्रकृतयोऽनुवर्तिष्यन्ते। पुनः प्रचण्डवर्मणे संदेश्यम्—'अनायकमिदं राज्यम्। अनेनैव सह बालिकेयं स्वीकर्तव्या' इति। तावदावां कापालिकवेषच्छन्नौ देव्यैव दीयमानभिक्षौ पुरो बहिरुपश्मशानं वत्स्यावः। पुनरार्यप्रायान् पौरवृद्धानाप्तांश्च मन्त्रिवृद्धानेकान्ते ब्रवीतु देवी—'स्वप्नेऽद्य देव्या विन्ध्यवासिन्या कृतः प्रसादः। अद्य चतुर्थेऽहनि प्रचण्डवर्मा मरिष्यति। पञ्चमेऽहनि रेवातटवर्तिनि मङ्गूवने परीक्ष्य वैजन्यम्, जनेषु निर्गतेषु कपाटमुद्घाट्य त्वत्सुतेन सह कोऽपि द्विजकुमारो निर्यास्यति। स राज्यमिदमनुपाल्य बालं ते प्रतिष्ठापयिष्यति। स खलु बालो मया व्याघ्रीरूपया तिरस्कृत्य स्थापितः। सा चेयं वत्सा मञ्जुवादिनी तस्य द्विजातिदारकस्य दारत्वेनैव कल्पिता' इति। तदेतदतिरहस्यं युष्मास्वेव गुप्तं तिष्ठतु यावदेतदुपपत्स्यते' इति।

संस्कृत व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, कर्णे, जीर्णं—वृद्धम्, अब्रवम्,⋯ दुहितरि—मञ्जुवादिन्यां, सम्यक्प्रतिपत्त्या—यथायथं कर्तव्यताज्ञानेन स्नेहप्रदर्शनेनेत्यर्थः, ⋯प्रत्याकृष्य—प्रत्यानीय, बालकं, जिघांसति—हन्तुमिच्छति। ⋯अस्य—भास्करवर्मणः,⋯रहः—निर्जने, निवेद्य, पुनः—पश्चात्, कुमारः, शार्दूलभक्षितः—व्याघ्रेण खादितः,⋯आक्रोशनं—क्रन्दनम्,⋯त्वन्मुखेन—त्वां

सम्प्रेष्येत्यर्थः,…स—मित्रवर्मा वाच्यः, यदपेक्षया—यस्य तनयस्य अपेक्षया अनुरोधेन, …अत्यक्रमिषम्—अतिक्रान्तवती,…अगात्—प्रतस्थे। …प्रतिपद्य—प्राप्य, अभिपत्स्यते—अनुग्रहीष्यति देवीमिति शेषः,…वत्सनाभनाम्ना—वत्सनाभाख्येन,…संनीय—मिश्रयित्वा,…तया—मालया, सः—मित्रवर्मा. …अनेन—मद्दत्तेन एतेन, अगदेन—विषनाशनेन औषधविशेषेण, संगमिते—मिश्रिते,…स्वदुहित्रे—निजकन्यायै मञ्जुवादिन्यैः,…तस्मिन्—मित्रवर्मणि, तस्यां—दुहितरि मञ्जुवादिन्यां, निर्विकारायां—विकारशून्यायां, सती—पतिव्रता,…एनां—देवीम्, प्रकृतयः—प्रजाः—अनुवर्तिष्यन्ते—अनुसरिष्यन्ति। …सन्देश्यं—वाचिकं प्रेषणीयम्, अनायकं—नायकशून्यम्,…अनेन—राज्येन,…स्वीकर्तव्या—विवाह्या, बालिका—मञ्जुवादिनी। तावत्—तावता कालेन, आवाम्—अहं भास्करवर्मा च, कापालिकवेषच्छन्नौ—कापालिकस्तान्त्रिकव्रतपरः तस्य वेषेण छन्नौ तिरोहितौ,…दीयमानभिक्षौ—दीयमाना भिक्षा याभ्यां तौ, पुरो बहिः—नगराद्बहिः, उपश्मशानं—श्मशानसमीपे, …आर्यप्रायान्—साधुप्रायान्, पौरवृद्धान्—नागरिकवृद्धजनान्, आप्तान्—विश्वस्तान्,…मद्भवने—मदागारे, वैजन्यं—जनशून्यताम्, परीक्ष्य—प्रमाणेन निश्चित्य,…तिरस्कृत्य—आच्छाद्य गोपायित्वेत्यर्थः…द्विजातिदारकस्य—द्विजबालकस्य, दारत्वेन—भार्यात्वेन,…यावत्—यत्कालपर्यन्तम्, एतत्, उपपत्स्यते—सेत्स्यति।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर मैंने वृद्ध के कान में कहा—'धूर्त मित्रवर्मा पुत्री पर सम्यक् कर्तव्य-ज्ञान या स्नेह प्रदर्शित करके माता को विश्वास दिलाकर उसके द्वारा बालक को खींचकर (अर्थात् अपने पास बुलाकर) मारना चाहता है। इसलिए तुम लौटकर इस (बालक) का कुशल-मंगल और मेरा वृत्तान्त एकान्त में महारानी से निवेदन करके पश्चात् 'राजकुमार' को बाघ खा गया' ऐसा प्रकट रूप से कहकर रोना आरंभ कर देना। वह दुर्बुद्धि (मित्रवर्मा) भीतर से प्रसन्न होता हुआ और बाहर से दुःख प्रकट करता हुआ महारानी को सान्त्वना देगा। इसके बाद महारानी तुम्हारे द्वारा उससे यह कहें कि 'जिसके लिए मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी, वह बालक भी मेरे पाप के कारण परलोक चला गया। अब तो मैं तुम्हारी आज्ञाकारिणी ही बनूंगी'। इस प्रकार कहा जाने पर वह प्रसन्न होकर महारानी के पास जायेगा। तब महारानी इस

वत्सनाभ नामक महाविष को जल में मिलाकर उसमें माला डुबोकर मित्रवर्मा की छाती और मुख पर यह कहकर मारें कि यदि मैं पतिव्रता हूँ तो यह माला की मार तुझ पापी के लिए तलवार का प्रहार हो जाय। फिर इस ओषधि से मिले हुए जल में उस माला को डुबोकर अपनी पुत्री को वह दे दें। उस (मित्रवर्मा) के मर जाने पर और उस (बालिका) के निर्विकार (सकुशल) रहने पर प्रजायें महारानी को पतिव्रता ही समझकर अनुसरण करेंगी। पश्चात् प्रचण्डवर्मा के पास (यह) सन्देश भेजना कि यह राज्य राजा से रहित हो गया है। इसी (राज्य) के साथ इस बालिका को स्वीकार कीजिए। तब तक हम दोनों (विश्रुत और भास्करवर्मा) कापालिक के वेश में छिपकर महारानी ही के द्वारा दी जाने वाली भिक्षा को लेते हुए नगर से बाहर श्मशान के समीप निवास करेंगे। फिर माननीय व्यक्तियों, नागरिक वृद्धों, विश्वासपात्र वृद्ध मन्त्रियों से महारानी एकान्त में कहें कि आज स्वप्न में भगवती विन्ध्यवासिनी ने मुझ पर कृपा की है। (और कहा है) आज के चौथे दिन प्रचण्डवर्मा मर जायेगा। पाँचवें दिन नर्मदा-तट पर स्थित मेरे मन्दिर में सन्नाटे की जाँच-पड़ताल करके, लोगों के निकल जाने पर फाटक खोलकर तुम्हारे पुत्र के साथ कोई ब्राह्मण-कुमार निकलेगा। वह इस राज्य का पाल करके तुम्हारे बालक को प्रतिष्ठित करेगा (अर्थात् राज्यसिंहासन पर बिठाएगा)। वह बालक बाघिन का रूप बनाये हुये मेरे द्वारा छिपाकर रखा गया है और यह आयुष्मती मञ्जुवादिनी उस ब्राह्मण कुमार की पत्नी होने के लिए ही रची गई है। इसलिए यह अत्यन्त रहस्य (की बात) आप ही लोगों तक गुप्त रहे जब तक यह सम्पन्न न हो जाय।

टिप्पणी—जीर्णम्—वृद्ध पुरुष को। √जॄ+क्त=जीर्णः, तम्। **सम्यक्प्रतिपत्त्या**—अच्छी तरह व्यवहार करने से, अनुकम्पा या स्नेह दिखाने से। **मातरं विश्वास्य**—भाव यह है कि पुत्री का विवाह कर देने से माता को यह विश्वास होगा कि यह हमारा शुभचिन्तक है। **प्रत्याकृष्य**—खींचकर, अपने पास बुलाकर। **जिघांसति**—मारना चाहता है। √हन्+सन्+लट्—तिप्। **प्रतिगत्य**—लौटकर। प्रति√गम्+क्त्वा–ल्यप्। **देव्यै निवेद्य**—देवी से कहकर। 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति सूत्रेणात्र चतुर्थी। **दुर्मतिः**—दुष्टबुद्धि।

दुष्टा मतिर्यस्य स दुर्मतिः (प्रा० ब० स०)। **अन्तः प्रीतः**—हृदय से प्रसन्न। अन्तः प्रीतः इति अन्तःप्रीतः (सुप्सुपा स०)। **त्वन्मुखेन**—तुम्हारे मुँह से अर्थात् तुम्हारे द्वारा। तव मुखम् त्वन्मुखम् (ष० त०), तेन। **यदपेक्षया**—जिसके निमित्त। **अत्यक्रमिषम्**—उल्लंघन किया। **अगात्**—चला गया। √इण्+लुङ—तिप्, इणो गादेशः। **त्वदादेशकारिणी**—तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाली। तव आदेशः त्वदादेशः (ष० त०), त्वदादेशं कर्तुं शीलं यस्याः सा त्वदादेशकारिणी त्वदादेश√कृ+णिनि+ङीप्, उपपद स०। **प्रतिपद्य**—प्राप्त कर। प्रति√पद्+क्त्वा—ल्यप्। **अभिपत्स्यते**—समीप जाएगा। **वत्सनाभनाम्ना**—वत्सनाभ नामक। वत्सनाभ इति नाम यस्य तत् वत्सनाभनाम (ब० स०), तेन। **संनीय**—मिलाकर। सम्√नी+क्त्वा—ल्यप्। **तोये**—जल में। **मज्जयित्वा**—डुबोकर। √मस्ज्+णिच्+क्त्वा। **पापीयसः**—अत्यन्त पापी। अतिशयेन पापः इति पापीयान्+पाप+ईयसुन्, तस्य। **अगदेन**—ओषधि से। **संगमिते**—मिले हुए। **निर्विकारायाम्**—विकारहीन अर्थात् विष के किसी भी प्रकार के प्रभाव से रहित। **सत्याम्**—होने पर। अत्र 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सूत्रेण भावे सप्तमी। **प्रकृतयः**—प्रजायें। **अनुवर्तिष्यन्ते**—अनुसरण करेंगी। **सन्देश्यम्**—संदेश भेजना चाहिए। सम्√दिश्+ण्यत्। **अनायकम्**—नायक या अधिपति से रहित। अविद्यमानः नायकः यस्मिन् तत् अनायकम् (न० ब० स०) **कापालिकवेषच्छन्नौ**—कापालिक (खप्पड़ धारण करने वाला वाममार्गी साधक) के वेष में छिपे हुए। कपाले चरतीति कापालिकः कपाल+ठक्-इक। कापालिकस्य वेषः कापालिकवेषः (ष० त०) कापालिकवेषेण छन्नौ इति कापालिकवेषच्छन्नौ (तृ० त०)। **दीयमानभिक्षौ**—जिन्हें भिक्षा दी जा रही हो ऐसे। दीयमाना भिक्षा याभ्यां तौ (ब० स०)। **उपश्मशानम्**—श्मशान के पास। श्मशानस्य समीपम् इति उपश्मशानम् (अव्य० स०)। **वत्स्यावः**—निवास करेंगे।√वस्+लृट्—वस्। **आर्यप्रायान्**—सम्माननीय व्यक्तियों को। प्रायण आर्याः इति आर्यप्रायाः, तान्। **पौरवृद्धान्**—नागरिकों में वृद्धों या श्रेष्ठ लोगों को। पुरे भवाः पौराः पुर+अण्। पौरेषु वृद्धाः इति पौरवृद्धाः (स० त०), तान्। **आप्तान्**—विश्वस्त पुरुषों को। **वैजन्यम्**—विजनता, सूनापन। विगताः जनाः यस्मात् तत् विजनम् (प्रा० ब०

स०), विजनस्य भावः वैजन्यम् विजन+ष्यञ्। **कपाटम्**—किवाड़ को। **उद्घाट्य**—खोलकर। उद्√घट्+णिच्+क्त्वा–ल्यप्। **प्रतिष्ठापयिष्यति**—प्रतिष्ठित करेगा, बैठालेगा। **व्याघ्रीरूपया**—बाघिन का रूप धारण किये हुई। व्याघ्र्याः रूपमिव रूपं यस्याः सा व्याघ्रीरूपा (ब० स०), तया। **द्विजातिदारकस्य**—ब्राह्मणपुत्र की। द्विजातेः दारकः कुमारः इति द्विजातिदारकः, तस्य। **दारत्वेन**—पत्नीत्वेन। पत्नी रूप से। दारायाः भावः दारत्वम् दारा+त्व, 'सामान्ये नपुंसकम्' इत्यनेन दारा इत्यस्य नपुंसकत्वेन ह्रस्वः। वस्तुतः यहाँ 'दारात्वेन' प्रयोग होना चाहिए। **कल्पिता**—रचिता।√क्लृप्+क्त+टाप्। **उपपत्स्यते**—सम्पन्न या घटित होगा। उप√पद्+लृट्—त।

स साम्प्रतमतिप्रीतः प्रयातः। अर्थश्चायं यथाचिन्तितमनुष्ठितोऽभूत्। प्रतिदिशं च लोकवादः प्रासर्पत्—'अहो माहात्म्यं पतिव्रतानाम्। असिप्रहार एव हि स मालाप्रहारस्तस्मै जातः। न शक्यमुपधियुक्तमेतत्कर्मेति वक्तुम्। यतस्तदेव दत्तं दाम दुहित्रे स्तनमण्डनमेव तस्यै जातं न मृत्युः। योऽस्याः पतिव्रतायाः शासनमतिवर्तते स भस्मैव भवेत् इति।

अथ महाव्रतिवेषेण मां च पुत्रं च भिक्षार्थं प्रविष्टौ दृष्ट्वा प्रस्नुतस्तनी प्रत्युत्थाय हर्षाकुलमब्रवीत्—'भगवन्' अयमञ्जलिः। अनाथोऽयं जनोऽनुगृह्यताम्। अस्ति ममैकः स्वप्नः स किं सत्यो न वा' इति। मयोक्तम्—'फलमस्याद्यैव द्रक्ष्यसि' इति। 'यद्येवं बहु भागधेयमस्या वो दास्याः। स खल्वस्याः सानाथ्यशंसी स्वप्नः' इति मद्दर्शनरागबद्धसाध्वसां मञ्जुवादिनीं प्रणमय्य, भयोऽपि हर्षगर्भमब्रूत—'तच्चेन्मिथ्या सोऽयं युष्मदीयो बालकपाली श्वो मया निरोद्धव्यः' इति। मयापि सस्मितं मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्येण 'एवमस्तु' इति लब्धभैक्ष्यः नालीजङ्घमाकार्य निर्गम्य ततश्च तं चानुयान्तं शनैरपृच्छम्—'क्वासावल्पायुः प्रथितः प्रचण्डवर्मा' इति। सोऽब्रूत—'राज्यमिदं ममेत्यपास्तशङ्को राजास्थानमण्डप एव तिष्ठत्युपास्यमानः कुशीलवैः' इति।

संस्कृत व्याख्या—सः—नालीजंघः,......प्रयातः—प्रस्थितः। अर्थः—मदुक्तो विषयः,......प्रतिदिशं—सकलासु दिक्षु, लोकवादः—जनरवः, प्रासर्पत्—प्राचरत्।......तस्मै—तदर्थं मित्रवर्मणे इत्यर्थः,......उपधियुक्तं—कपटतायुक्तं,......दाम—माल्यं, दुहित्रे—कन्यायै, स्तनमण्डनमेव—स्तनयोर्भूषणमेव,

......अतिवर्तते—लंघयति,......महाव्रतिवेषेण—कापालिकच्छद्मना, ...भिक्षायै—भिक्षार्थम्,......प्रस्नुतस्तनी—स्रवत्पयोधरा,......यद्येवं—यदि भवद्वचनं सत्यं स्यादित्यर्थः,......अस्याः—ममेत्यर्थः,......अस्याः—मद्दुहितुः, सानाथ्य-शंसी—सनाथतासूचकः,......मद्दर्शनरागबद्धसाध्वसाम्—मम दर्शनात् रागेण प्रेम्णा बद्धमुत्पादितं साध्वसं लज्जा यस्याः ताम्,......प्रणमय्य—प्रणामं कारयित्वा,......तत्—तव वचनं, चेत्—यदि, मिथ्या—असत्यं (भवेत्तर्हि) ......बालकपाली——बालकव्रती,......मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्येण——मञ्जुवादिन्या रागेण प्रेम्णा लीना संसक्ता या दृष्टिः तया लीढं कवलितं धैर्यं यस्य तादृशेन,......तं—नालीजङ्घम्......सः—नालीजङ्घः, ...अपास्तश-ङ्कः—निर्भीकः, राजास्थानमण्डपे—राजसभायाम्, एव, तिष्ठति, उपास्यमानः—सेव्यमानः, कुशीलवैः—चारणैः।

हिन्दी अनुवाद—वह (वृद्ध) अब अत्यन्त प्रसन्न होकर विदा हुआ। और यह विषय जैसा सोचा गया वैसा ही कार्यान्वित हुआ (अर्थात् मैंने जो योजना बतायी थी उसे उसने कार्य रूप में परिणत कर दिया)। चारों तरफ यह प्रवाद फैल गया—'अहा ! पतिव्रताओं का कैसा माहात्म्य है। माला का प्रहार ही उस (मित्रवर्मा) के लिए तलवार का प्रहार बन गया। इस कार्य को छलयुक्त भी नहीं कह सकते; क्योंकि कन्या को दी गई वही माला उसके स्तनों का आभूषण हो गई न कि मृत्यु। जो व्यक्ति इस पतिव्रता की आज्ञा का उल्लंघन करेगा, वह भस्म ही हो जाएगा'।

अनन्तर कापालिक वेश में मुझे और (अपने) पुत्र को भिक्षा के लिए आये हुए देखकर दूध चूते हुए स्तनों वाली (महारानी) उठकर हर्ष से विभोर होकर बोली—'भगवन् ! यह (मेरा) प्रणाम (है)। इस अनाथ जन पर कृपा कीजिए। मेरा एक स्वप्न है। वह सत्य होगा या नहीं ?' मैंने कहा—'उसका फल आज ही देखोगी'। 'यदि ऐसा हो जाय तो तुम्हारी इस दासी का बड़ा भाग्य है। वह स्वप्न इस (कन्या की) सनाथता का सूचक है। ऐसा कहकर मेरे दर्शन से प्रेम के कारण उत्पन्न लज्जा वाली मञ्जुवादिनी से (मुझे) प्रणाम कराकर, पुनः हर्ष से गद्गद होकर बोली—'यदि वह (तुम्हारा) वचन असत्य हुआ तो तुम्हारे छोटे कापालिक को कल मैं रोक लूँगी'। मञ्जुवादिनी

की रागासक्त दृष्टि से नष्ट धैर्य वाले मैंने मुसकराते हुए 'ऐसा ही सही' कहकर भिक्षा प्राप्त की और नालीजंघ को बुलाकर बाहर निकलकर पीछे-पीछे आते हुए उससे धीरे से पूछा—'वह प्रसिद्ध अल्पायु प्रचण्डवर्मा कहाँ है?' उसने कहा—'यह राज्य मेरा है' ऐसा सोचकर निर्भीक होकर वह बन्दीजनों द्वारा सेवित होता हुआ राजा के सभा-मण्डप में अवस्थित है।'

टिप्पणी—स साम्प्रतमतिप्रीतः प्रयातः—यहाँ 'साम्प्रत' शब्द का अर्थ अब' मानकर हिन्दी अनुवाद किया गया है। यदि इसका अर्थ 'उचित' मानें तो वाक्यार्थ होगा—'ठीक है' ऐसा कहकर अत्यन्त प्रसन्न होकर वह रवाना हुआ। **अतिप्रीतः**—बहुत प्रसन्न। अतिशयं प्रीतः अतिप्रीतः (प्रा० स०)। **प्रतिदिशम्**—प्रत्येक दिशा में। दिशि दिशि इति प्रतिदिशम् (अव्य० स०)। **लोकवादः**—प्रवाद, जनरव, लोगों में शुहरत। लोकानां वादः लोकवादः (ष० त०)। **माहात्म्यम्**—महिमा। महान् आत्मा यस्य स महात्मा (ब० स०), तस्य भावः माहात्म्यम् महात्मन्+ष्यञ्। **उपधियुक्तम्**—कपट से पूर्ण। उपाधिना युक्तम् (तृ० त०)। **स्तनमण्डनम्**—कुचों का आभूषण या शोभा। स्तनयोः मण्डनम् (ष० त०)। **अतिवर्तते**—उल्लंघन करता है। **महाव्रतिवेषेण**—कापालिक के वेश में। महांश्चासौ व्रती महाव्रती (कर्म० स०), तस्य वेषः, तेन। **प्रस्नुतस्तनी**—जिसके स्तनों से दूध बह रहा हो। प्र√स्नु+क्त—प्रस्नुत। प्रस्नुतौ स्तनौ यस्याः सा प्रस्नुतस्तनी (ब० स०)+ङीष्। **हर्षाकुलम्**—हर्ष से गद्गद। हर्षेण आकुलं यथा स्यात् तथा। **भागधेयम्**—भाग्य। भाग+धेय 'भागरूपनामभ्यो धेयः' इत्यनेन। **सानाथ्यशंसी**—सनाथता (पतियुक्त होने का भाव) सूचक। नाथेन सहिता सनाथा, सनाथायाः भावः सानाथ्यम् सनाथा+ष्यञ्। सानाथ्यं शंसति तच्छीलः इति सानाथ्यशंसी सानाथ्य√शंस्+णिनि, उपपद स०। **मद्दर्शनरागबद्धसाध्वसाम्**—जिसको मेरे दर्शन से उत्पन्न अनुराग के कारण लज्जा हुई हो ऐसी। मम दर्शनम् मद्दर्शनम् (ष० त०), मद्दर्शनेन रागः मद्दर्शनरागः (तृ० त०), तेन बद्धं साध्वसं यस्याः सा मद्दर्शनरागबद्धसाध्वसा (ब० स०), ताम्। **प्रणमय्य**—प्रणाम कराकर। प्र√नम्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **बालकपाली**—छोटा कापालिक या भिक्षु। बालश्चासौ कपाली इति बालकपाली (कर्म० स०)। **मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्येण**—मञ्जुवा-

दिनी की प्रेम भरी चितवन से जिसका धैर्य चाट लिया गया हो। मञ्जुवादिन्याः रागः (ष० त०), तेन लीना (तृ० त०), तादृशी दृष्टिः (कर्म० स०),तया लीढं धैर्यं यस्य स मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्यः (ब० स०), तेन। **लब्धभैक्ष्यः**—जिसे भिक्षा मिल चुकी हो। भिक्षा एव भैक्ष्यम् भिक्षा+ष्यञ्, लब्धं भैक्ष्यं येन स लब्धभैक्ष्यः (ब० स०)। **आकार्य**—बुलाकर। आ√कृ+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **अपास्तशङ्कः**—निःशंक या निर्भीक। **राजास्थानमण्डपे**—राजा के सभागृह में। आस्थानमेव मण्डपम् (कर्म० स०), राज्ञः आस्थान-मण्डपम् (ष० त०), तस्मिन्। **उपास्यमानः**—स्तुत होता हुआ, प्रसन्न किया जाता हुआ। उप√आस्+कर्मणि लट्—शानच्। **कुशीलवैः**—चारणों या बन्दीजनों द्वारा।

'यद्येवमुद्याने तिष्ठ' इति तं जरन्तमादिश्य तत्प्राकारैकपार्श्वे क्वचिच्छून्य-मठिकायां मात्राः समवतार्य, तद्रक्षणनियुक्तराजपुत्रः, कृतकुशीलववेषलीलः प्रचण्डवर्माणमेत्यान्वरञ्जयम्। अनुरञ्जितातपे तु समये, जनसमाजज्ञानोप-योगीनि संहृत्य नृत्यगीतनानारुदितादिहस्तचङ्क्रमणमूर्ध्वपादालातपादापीडवृश्चि-कमकरलङ्घनादीनि मत्स्योद्वर्तनादीनि च करणानि, पुनरादायादायासन्नवर्तिनां क्षुरिकाः ताभिरुपाहितवर्ष्मा चित्रदुष्कराणि करणानि श्येनपातोत्क्रोशपातादीनि दर्शयन्, विंशतिचापान्तरालावस्थितस्य प्रचण्डवर्मणश्छुरिकयैकया प्रत्युरसं प्रहृत्य, 'जीव्याद्वर्षसहस्रं वसन्तभानुः' इत्यभिगर्जन्, मद्गात्रमुत्कर्त्तुमुद्यतासेः कस्यापि चारभटस्य पीवरांसबाहुशिखरमाक्रम्य, तावतैव तं विचेतीकुर्वन्, आकुलं च लोकमुच्चक्षूकुर्वन्, द्विपुरुषोच्छ्रितं प्राकारमत्यलङ्घयम्। अवप्लुत्य चोपवने 'मदनुपातिनामेष पन्था दृश्यते' इति ब्रुवाण एव नालीजङ्घसमीकृत-सैकतास्पष्टपादन्यासया तमालवीथ्या चानुप्राकारं प्राचा प्रतिप्रधावितः, पुनर-वाचोच्चितेष्टकचितत्वादलक्ष्यपातेन प्रद्रुत्य, लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयः, तस्यां शून्यमठिकायां तूर्णमेव प्रविश्य, प्रतिमुक्तपूर्ववेषः सह कुमारेण मत्कर्म-तुमुलराजद्वारदुःखलब्धवर्त्मा श्मशानोद्देशमभ्यगाम्। प्रागेव तस्मिन्दुर्गगृहे प्रतिमाधिष्ठान एव मया कृतं भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारं बिलम्।

संस्कृत व्याख्या—……जरन्तं—वृद्धमित्यर्थः, आदिश्य—आज्ञाप्य, तत्प्राकारैकपार्श्वे—तस्य सभामण्डपस्य प्राकारैकपार्श्वे प्राचीरैकभागे, क्वचित्, शून्यमठिकायां—निर्जनमठे, मात्राः—परिच्छदान्, समवतार्य—अङ्गादपनीय, तद्रक्षणनियुक्तराजपुत्रः—तद्रक्षणे मात्रासंरक्षायां नियुक्तो राजपुत्रो येन तादृशः, कृतकुशीलववेषलीलः—विहितचारणाकृतिवस्त्रः कुशीलवच्छद्मनेत्यर्थः,……एत्य—समीपं गत्वा, अन्वरञ्जयम्—प्रासादयम् । अनुरञ्जिततातपे—अनुरञ्जितः रक्तीभूतः आतपः सूर्यालोकः यस्मिन् तादृशे, समये—दिवावसानकाले इत्यर्थः, जनसमाजज्ञानोपयोगीनि—जनसमाजस्य लोकसङ्घातस्य ज्ञानोपयोगीनि ज्ञानविषयीभूतानि करणानीति शेषः यथा ते मदभिप्रायं जानन्ति तदुपयोगिव्यापारानित्यर्थः, संहृत्य—संच्छाद्य गोपायित्वेत्यर्थः, नृत्यगीतनानारुदितादिहस्तचङ्क्रमणं—नृत्यं नर्तनं गीतं गानं नानारुदितं विविधरोदनानुकारिशब्दः तदादिभिः तत्प्रभृतिभिः सह हस्तचङ्क्रमणम् इतस्ततो द्रुतहस्तप्रसारणम्, ऊर्ध्वपादालातपादापीडवृश्चिकमकरलङ्घनादीनि—ऊर्ध्वपादं 'कराभ्यामवनिं स्पृष्ट्वा मूर्धानं भ्रामयेन्मुहुः। उत्तानीकृत्य चरणावूर्ध्वपादं तदुच्यते ।।' इत्युक्तलक्षणम् अलातपादम् 'उद्धृत्यैकन्तु चरणमन्यं कृत्यैव कुञ्चितम्। नृत्यत्यनुमतं तिर्यक् तदलातकमेव च ।।' इत्युक्तलक्षणम् ते आपीडौ भूषणे यस्य तादृशं क्रीडनमित्यर्थः वृश्चिकमकरलङ्घनं वृश्चिकमकरयोः प्रचारादिवत् क्रीडाविशेष इत्यर्थः एवमादीनि, मत्स्योद्वर्तनादीनि—मत्स्यवदुल्लण्ठनादीनि, करणानि—क्रियाविशेषान्, आसन्नवर्तिनां—समीपस्थितानां, क्षुरिकाः—शस्त्रिकाः, पुनः—भूयः, आदाय आदाय—गृहीत्वा गृहीत्वा, ताभिः—क्षुरिकाभिः, उपाहितवर्ष्मा—संयुक्तशरीरः, चित्रदुष्कराणि—चित्राणि आश्चर्याणि दुष्कराणि अन्यैः कर्तुमशक्यानि, करणानि—व्यापारान्, श्येनपातोत्क्रोशपातादीनि—श्येनः पक्षिविशेषः तस्य पातः 'परिक्रम्यान्तरिक्षेण सम्प्राप्योच्चैरदृश्यताम्। आकस्मिकाभिपातेन श्येनपात उदीरितः ।।' इत्युक्तलक्षणं पतनम् उत्क्रोशः कुररीपक्षी तस्य पातः पतनविशेषः तत्प्रभृतीनि दर्शयन्, विंशतिचापान्तरालावस्थितस्य—विंशतिचापं विंशतिधनुः अशीतिहस्तप्रमाणमित्यर्थः अन्तरालं व्यवधानं तत्रावस्थितस्य, प्रचण्डवर्मणः, प्रत्युरसं—वक्षसि, एकया, छुरिकया, प्रहृत्य—आहत्येत्यर्थः 'वसन्तभानुः वर्षसहस्रं, जीव्यात्—जीवतु,' इत्यभिगर्जन्—इत्युद्घोषयन्, मद्गात्रं—मच्छरीरम्,

उत्कर्त्तुं—छेत्तुम्, उद्यतासेः—उद्धृतखड्गस्य, कस्यापि, चारभटस्य—गुप्तचर-वीरस्य, पीवरांसबाहुशिखरं—पीवरौ स्थूलौ अंशौ ययोः तयोः बाह्वोः करयोः शिखरं मूर्द्धभागम्, आक्रम्य, तावतैव तन्मात्रेणैव, तं—भटम्, विचेतीकुर्वन्—मोहयन्नित्यर्थः, आकुलं—सम्भ्रमान्वितम्, लोकम्, उच्चक्षूकुर्वन्—ऊर्ध्वनेत्रं सम्पादयन्, द्विपुरुषोच्छ्रितं—पुरुषद्वयप्रमाणोन्नतम्, प्राकारम्—प्राचीरम्, अत्य-लङ्घयम्। अवप्लुत्य—अधो लम्फयित्वा, मदनुपातिनां—मामनुधावताम्, एषः, पन्थाः—मार्गः, दृश्यते, ब्रुवाण एव, नालीजङ्घसमीकृतसैकतास्पष्टपादन्यासया—नालीजङ्घेन समीकृतं समानीकृतं यत् सैकतं बालुकामयस्थानं तत्र अस्पष्टाः पादन्यासाः चरणचिह्नानि यस्यां तया, तमालवीथ्या—तमालवृक्षपद्धत्या, च, अनुप्राकारं—प्राकारसमीपम्, प्राचा—पूर्वया दिशा, प्रतिप्रधावितः—पलायितः, पुनः, अवाचा—दक्षिणदिशा, उच्चितेष्टकचितत्वात्—उच्चितानि राशीकृतोच्छ्रा-यानि यानि इष्टकानि तैः चितत्वात् व्याप्तत्वात्, अलक्ष्यपातेन—अलक्ष्यः अदृश्यः पातः प्रधावनं तेन, प्रद्रुत्य—धावित्वा, लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयः—लङ्घितम् अतिक्रान्तम् प्राकारवप्रस्य प्राचीरस्य खातवलयं खातवेष्टनं येन तथाभूतः, तस्यां—पूर्वोक्तायां, शून्यमठिकायां, तूर्णमेव—शीघ्रमेव, प्रविश्य, प्रतिमुक्तपूर्ववेषः—प्रतिमुक्तः त्यक्तः पूर्ववेषः कुशीलववेषो येन तादृशः, कुमारेण—भास्करवर्मणा, सह—साकं, मत्कर्मतुमुलराजद्वारदुःखलब्धवर्त्मा—मत्कर्मणा पूर्वोक्ताचरणेन तुमुले सङ्कुले राजद्वारे दुःखेन कष्टेन लब्धं वर्त्म पन्था येन तादृशः, श्मशा-नोद्देशम्—श्मशानभूमिम्, अभ्यगाम्—अगच्छम्। प्रागेव—पूर्वमेव, ...प्रति-माधिष्ठाने एव—प्रतिमायाः स्थाने एव, मया, भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरस्थगित-वाह्यद्वारं—भग्नं त्रुटितं पार्श्वयोः पार्श्वभागयोः स्थैर्यं काठिन्यं यस्य तादृशेन स्थूलेन महता प्रस्तरेण स्थगितम् आच्छादितं वाह्यद्वारं बहिर्द्वारं यस्य तादृशम्, बिलं—छिद्रम्, कृतम्।

हिन्दी अनुवाद—यदि ऐसा है तो तुम (इस) बगीचे में ठहरो, यह उस वृद्ध को आदेश देकर उस (बगीचे) की चहारदीवारी के एक कोने में बने हुए किसी निर्जन मठ में (अपना) पोशाक (कापालिक वेश) उतारकर, उसकी रखवाली के लिए राजकुमार को नियुक्त करके चारण का वेश तथा स्वरूप बनाकर प्रचण्डवर्मा के पास जाकर (उसका) मनोरञ्जन करने लगा। दिनान्त

के समय जन-साधारण के ज्ञान के लिए उपयोगी कृत्यों नाच, गान, नाना प्रकार के रोदन आदि करना तथा हाथ चमकाना, दोनों हाथों से पृथ्वी को थामकर मस्तक घुमाते हुए पैरों को ऊपर उठाने तथा एक पैर उठाकर और दूसरा पैर सिकोड़कर नाचने रूप आभूषण वाला खेल करना विच्छू तथा मगर की तरह चलना और मछली के समान उलटना इत्यादि विशेष क्रियाओं—को बन्द करके फिर समीपवर्ती लोगों की छुरियाँ ले लेकर उन छुरियों से अपने शरीर को संयुक्त करके (अर्थात् उन पर अपने सारे शरीर का भार लादकर) बाज तथा कुररी पक्षी के समान झपट्टा मारना आदि अद्भुत एवं कठिन कार्यों को दिखलाता हुआ, अस्सी हाथ की दूरी पर अवस्थित प्रचण्डवर्मा की छाती में एक छूरी से प्रहार करके, 'वसन्तभानु हजार वर्ष जीयें' यह गरजता हुआ, मेरे शरीर को काटने के लिए तलवार उठाये हुए किसी गुप्तचर के मोटे कंधों वाली भुजा के ऊर्ध्वभाग पर आक्रमण करके, उतने ही से उसको मूर्च्छित करके, घबराये हुए लोगों को ऊर्ध्वदृष्टि (ऊपर ताकने की स्थिति में) करता हुआ दो पुरुष जितनी ऊँची चहारदीवारी को लाँघ गया।

वगीचे में कूदकर 'मेरा पीछा करने वालों का यह मार्ग दिखाई पड़ता है' यह कहता हुआ ही नालीजंघ द्वारा बराबर कर दिये गये बालूमय स्थान में अस्पष्ट (साफ दिखाई न पड़ने वाले) पदचिह्न वाली तमालवृक्षों की सड़क से चहारदीवारी के पास ही पास पूर्व की ओर भागा। फिर दक्षिण की ओर, ढेर लगी हुई इंटों से व्याप्त होने के कारण, अदृश्य चाल से दौड़कर, चहारदीवारी के चारों ओर खुदी हुई खाई रूपी घेरे को लाँघकर, उस निर्जन मठ में शीघ्र ही घुसकर, पहले के वेश (चारण-वेश) को त्यागकर कुमार (भास्करवर्मा) के साथ, मेरे कार्य से कोहराम मचे हुए राजद्वार पर बड़ी कठिनाई से रास्ता पाकर आधार-स्थान में ही मैंने एक बिल बना लिया था, जिसके बाहरी दरवाजे को एक मोटे पत्थर से, जिसके दोनों बगल की दृढ़ता नष्ट हो चुकी थी, ढक दिया था।

टिप्पणी—जरन्तम्—बूढ़े को। √जॄ+शतृ=जरन्, तम्। **तत्प्राकारैकपार्श्वे**—उस (उद्यान) की चहारदीवारी के एक बगल में। **तस्य प्राकारः**

तत्प्राकारः (ष० त०)। एकश्चासौ पार्श्वः एकपार्श्वः (कर्म० स०), तत्प्राकारस्य एकपार्श्वः (ष० त०), तस्मिन्। **शून्यमठिकायाम्**—सुनसान मठ या झोपड़ी में। अल्पो मठः मठिका मठ+कन्+टाप्, इत्व। शून्या चासौ मठिका शून्यमठिका (कर्म० स०), तस्याम्। **मात्राः**—वेश या वस्त्र आदि को। 'मात्रा परिच्छदेऽल्पेंशे प्रवृत्तौ कर्णभूषणे' इति वैजयन्ती। **समवतार्य**—उतारकर। सम्—अव√तृ+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **तद्रक्षणनियुक्तराजपुत्रः**—जिसने उस (मात्रा) की रक्षा में राजकुमार को नियुक्त किया है ऐसा (मैं)। तासां मात्राणां कन्थादिपरिच्छदानां रक्षणम् (ष० त०), तस्मिन् नियुक्तः राजपुत्रः येन सः (ब० स०)। **कृतकुशीलववेषलीलः**—जिसने चारण की वेश-भूषा तथा चाल-ढाल को अपना लिया है। वेषश्च लीला च इति वेषलीले (द्व० स०), कुशीलवस्य वेषलीले (ष० त०), कृते कुलीलववेषलीले येन स कृतकुशीलववेषलीलः (ब० स०)। **अन्वरञ्जयम्**—अनुरंजन किया, प्रसन्न किया। अनु√रञ्ज्+णिच्+लङ—तिप्। **अनुरञ्जिततातपे समये**—ऐसे समय में जब घूप लाल हो गई थी अर्थात् गोधूलि वेला में। अनुरञ्जितः आतपः यस्मिन् स अनुरञ्जितातापः (ब० स०), तस्मिन्। **जनसमाजज्ञानोपयोगीनि**—लोक-समूह के ज्ञान के लिए उपयुक्त (खेल)। जानानां समाजः, तस्य ज्ञानम् (ष० त०), तस्य तस्मै वा उपयोगीनि (ष० त० वा च० त०)। **संहृत्य**—समेटकर। **नृत्यगीतनानारुदितादिहस्तचङ्क्रमणम्,**—नाचना, गाना, नाना प्रकार के रोदन आदि करना (जैसे सियार, कुत्ते, गाय, भैंस, बिल्ली आदि की तरह रोना) और हाथों को घुमाना। नाना रुदितानि (कर्म० स०), तानि आदौ यषां तानि नानारुदितादीनि। नृत्यं च गीतं च नानारुदितादीनि च हस्तचङ्क्रमणं च इति नृत्यगीत०····चङ्क्रमणम् (समाहार द्व० स०)। **ऊर्ध्वपादालातपादापीडवृश्चिकमकरलङ्घनादीनि**—ऊर्ध्वपाद (एक प्रकार का नृत्य जिसमें दोनों हाथों से पृथ्वी को छकर सिर को बार-बार घुमाया जाता है और दोनों पैरों को ऊपर की ओर रखा जाता है) और अलातपाद (वह नृत्य जिसमें एक पैर को ऊपर उठाकर दूसरे पैर को मोड़कर तिरछा-तिरछा नाचना होता है) ही है आभूषण जिसका ऐसा (खेल) तथा बिच्छू और मगर के समान कूदने आदि (के खेल)। **मत्स्योद्वर्तनादीनि**—मछली के समान

उलटने आदि के खेल। मत्स्यवत् उद्वर्तनम् (उपमित स०), तत् आदौ येषां तानि (ब० स०)। **करणानि**—करामातें, कलाबाजियाँ। **आदाय-आदाय**—ले लेकर। **आसन्नवर्तिनाम्**—समीप में अवस्थित (लोगों की)। आसन्ने वर्तन्ते तच्छीला: इति आसन्नवर्तिन: आसन्न√वृत्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये उपपद स०, तेषाम्। **क्षुरिकाः**—छूरियों की। **उपाहितवर्ष्मा**—जिसने शरीर को सटा दिया है ऐसा। उपाहितं वर्ष्म येन स उपाहितवर्ष्मा (ब० स०)। **चित्रदुष्कराणि**—आश्चर्यजनक तथा अत्यन्त कठिन। चित्राणि च तानि दुष्कराणि चित्रदुष्कराणि (विशेषणोभयपदकर्म० स०)। **श्येनपातोत्क्रोशपाता-दीनि**—बाज तथा कुरर पक्षी के समान झपट्टा मारना आदि अथवा बाज के समान झपट्टा मारना और कुरर पक्षी के समान आकाश से पृथ्वी पर उतरना या कुहुँकना आदि (के खेल)। **विंशतिचापान्तरालावस्थितस्य**—बीस धनुष (८० हाथ) की दूरी पर बैठे हुए। विंशति चापा: विंशतिचापा: (कर्म० स०), तेषाम् अन्तरालम् इति विंशतिचापान्तरालम् (ष० त०), तस्मिन् अवस्थित: इति विंशतिचापान्तरालावस्थित: (स० त०), तस्य। **प्रत्युरसम्**—छाती में। उरसि इति प्रत्युरसम् (विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावेऽच् समासान्त:)। **वर्षसहस्रम्**—हजार वर्षों तक। वर्षाणां सहस्रं वर्षसहस्रम् (ष० त०), 'कालाध्वनोरत्यन्तसं-योगे' इति सूत्रेणात्र द्वितीया। **उत्कर्त्तुम्**—काटने के लिए। उद्√कृत्+तुमुन्। **उद्यतासेः**—खड्ग लिये हुए या जिसका खड्ग ऊपर को उठा हुआ था। उद्यत: असि: यस्य स उद्यतासि: (ब० स०), तस्य। **चारभटस्य**—गुप्तचर योद्धा के। चर एव चार: चर+अण्। चारश्चासौ भट: चारभट: (कर्म० स०), तस्य। **पीवरांसबाहुशिखरम्**—स्थूल कंधों वाली बाहों की चोटी पर। पीवरौ असौ ययो: तौ पीवरांसौ (ब० स०), पीवरांसौ च तौ बाहू पीवरांस-बाहू (कर्म० स०), तयो: शिखरम् पीवरांसबाहुशिखरम् (ष० त०)। **विचेती-कुर्वन्**—अचेत (बेहोश) करता हुआ। विगतं चेतो यस्य स विचेता: (ब० स०), न विचेता: इति अविचेता: (न० त०) अविचेतसं विचेतसं कुर्वन् इति विचेतीकुर्वन् विचेतस्+च्वि√कृ+शतृ। **आकुलम्**—क्षुब्ध। **उच्चक्षूकुर्वन्**—(लोगों की) आँखें ऊपर करता हुआ। उद्गतानि चक्षूंषि येषां ते उच्चक्षुष: (ब० स०), न उच्चक्षुष: इति अनुच्चक्षुष: (न० त०), अनुच्चक्षुष: उच्च-

क्षुषः कुर्वन् इति उच्चक्षूकुर्वन्, उच्चक्षुष्+च्वि√कृ+शतृ। **द्विपुरुषोच्छ्रितम्**—दो पुरसा ऊँचा (प्राकार)। द्वौ पुरुषौ इति द्विपुरुषौ (कर्म० स०), द्विपुरुषौ प्रमाणं यस्य तत् द्विपुरुषप्रमाणम्, द्विपुरुषप्रमाणम् उच्छ्रित इति द्विपुरुषोच्छ्रितः (मध्य० स०), तम्। **अवप्लुत्य**—कूदकर । अव√प्लु+क्त्वा—ल्यप्। **मदनुपातिनाम्**—मेरा अनुसरण या पीछा करने वालों का। माम् अनुपतन्ति तच्छीला: इति मदनुपातिनः अस्मद्—अनु√पत्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये, उपपद स०। तेषाम्। **नालीजङ्घसमीकृतसैकतास्पष्टपादन्यासया**—नालीजंघ द्वारा समतल किये हुए बालुकामय स्थान में अस्पष्ट पद-चिह्नों वाली। यह 'तमालवीथ्या' का विशेषण है। सैकत=सिकतामय, बलुही, जमीन, नालीजङ्घेन समीकृतम् इति नालीजङ्घसमीकृतम् (तृ० त०), नालीजङ्घसमीकृतं च तत् सैकतम् इति नालीजङ्घसमीकृतसैकतम् (कर्म० स०), नालीजङ्घसमीकृतसैकते अस्पष्टाः पादन्यासाः यस्यां सा नालीजङ्घसमीकृतसैकतास्पष्टपादन्यासा (ब० स०), तस्याम्। **तमालवीथ्या**—तमाल वृक्षों के मार्ग से अर्थात् ऐसे मार्ग से जिसके दोनों तरफ तमाल वृक्षों की पंक्ति लगी हुई थी। तमालानां वीथी (ष० त०), तया। **अनुप्राकारम्**—चहारदीवारी के पीछे या बगल या समीप। प्राकारस्य पृष्ठतः इति अनुप्राकारम् अथवा प्राकारस्य पार्श्वतः इति अनुप्राकारम् अथवा प्राकारस्य समीपे इति अनुप्राकारम् (अव्य० स०)। **प्राचा**—पूर्व दिशा से। **प्रतिप्रधावितः**—दौड़ा। प्रति—प्र√धाव्+क्त। **अवाचा**—दक्षिण दिशा से। **उच्चितेष्टकचितत्वात्**—ढर की हुई इंटों से व्याप्त होने के कारण अर्थात् इंटों का एक ऊँचा टीला होने के कारण। उद्+चि+क्त=उच्चित=राशि लगी हुई । उच्चितानि इष्टकानि इति उच्चितेष्टकानि (कर्म० स०), तैः चितम् इति उच्चितेष्टकचितम् (तृ० त०), उच्चितेष्टकचितस्य भावः उच्चितेष्टकचितत्वम् उच्चितेष्टकचित+त्व, तस्मात्। **अलक्ष्यपातेन**—न दिखाई पड़ने वाली दौड़ से। न लक्ष्यः अलक्ष्यः (न० त०), अलक्ष्यः पातः अलक्ष्यपातः (कर्म० स०), तेन। **प्रद्रुत्य**—दौड़कर। प्र√द्रु+क्त्वा—ल्यप्। **लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयः**—चहारदीवारी के भीटे की खाईं के घेरे को लाँघकर। प्राकारस्य वप्रः, तस्य खातम्, तस्य वलयम् (ष० त०), लङ्घितम् प्राकारवप्रखातवलयं येन स लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयः (ब० स०)।

तूर्णम्—शीघ्र। **प्रतिमुक्तपूर्ववेषः**—जिसने पहले की पोशाक (वेषभूषा) को त्याग दिया हो ऐसा। पूर्वः वेषः पूर्ववेषः (कर्म० स०), प्रतिमुक्तः पूर्ववेषः येन स प्रतिमुक्तपूर्ववेषः (ब० स०)। **मत्कर्मतुमुलराजद्वारदुःखलब्धवर्त्मा**—मेरे कार्य (प्रचण्डवर्मा के वध) से घबराये हुए राजद्वार पर जिसने कठिनाई से रास्ता पाया हो ऐसा। मम कर्म मत्कर्म (ष० त०), मत्कर्मणा तुमुलं मत्कर्मतुमुलम् (तृ० त०), मत्कर्मतुमुलं राजद्वारम् मत्कर्मतुमुलराजद्वारम् (कर्म० स०), तस्मिन् दुःखेन लब्धं वर्त्म येन स मत्कर्मतुमुलराजद्वारदुःखलब्धवर्त्मा (ब० स०)। **श्मशानोद्देशम्**—श्मशान-प्रदेश या श्मशान-भूमि को। **प्रतिमाधिष्ठाने**—मूर्ति के आधार-स्थान में। प्रतिमायाः अधिष्ठानम् (ष० त०), तस्मिन्। **भग्नपार्श्वस्थैर्य-स्थूलप्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारम्**—जिसके बाहरी दरवाजे को बगल में टटी हुई दृढ़ता (मजबूती) वाले मोटे पत्थर से बन्द कर दिया था। स्थूलश्चासौ प्रस्तरः स्थूलप्रस्तरः (कर्म० स०)। पार्श्वयोः स्थैर्यम् पार्श्वस्थैर्यम् (ष० त०)। बाह्यं च तत् द्वारम् बाह्यद्वारम् (कर्म० स०)। भग्नं पार्श्वस्थैर्यं यस्य स भग्नपार्श्वस्थैर्यः (ब० स०), तादृशः स्थूलप्रस्तरः भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरः (कर्म० स०), तेन स्थगितं बाह्यद्वारं यस्य तत् भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारम् (ब० स०)। यह 'बिलम्' का विशेषण है।

अथ गलति मध्यरात्रे वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ तद्बिलमावां प्रविश्य तूष्णीमतिष्ठाव। देवी तु पूर्वेद्युरेव यथार्हमग्निसंस्कारं मालवाय दत्त्वा प्रचण्डवर्मणे, चण्डवर्मणे च तामवस्थामश्मकेन्द्रोपधिकृतामेव सन्दिश्य, उत्तरेद्युः प्रत्युषस्येव पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धैः सहाभ्येत्य भगवतीमर्चयित्वा सर्वजनप्रत्यक्षं परीक्षितकुक्षिवैजन्यं तद्भुवनं विधाय दत्तदृष्टिः सह जनेन स्थित्वा, पटीयांसं पटहशब्दमकारयत्। अणुतररन्ध्रप्रविष्टेन तेन नादेनाहं दत्तसंज्ञः शिरसैवोत्क्षिप्य सप्रतिमं लोहपादपीठमंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलमभयकर-विधृतमेकपार्श्वमेकतो निवेश्य निरगमम्। निरगमयं च कुमारम्। अथ यथा-पूर्वमर्चयित्वा दुर्गामुद्घाटितकपाटः प्रत्यक्षीभूय प्रत्ययहृष्टदृष्टीः स्पष्टरोमाञ्च-मुद्यताञ्जलिरूढविस्मयं च प्रणिपतन्तीः प्रकृतीरभ्यधाम्—'इत्थं देवी विन्ध्य-वासिनी मन्मुखेन युष्मानाज्ञापयति—मया सकृपया शार्दूलरूपेण तिरस्कृत्या द्य वो दत्तमेनमद्यप्रभृति मत्पुत्रतया मन्दमातृपक्ष इति परिगृह्णन्तु भवन्तः।

अपि च 'दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मानं मां मन्यध्वमस्य रक्षितारम्। रक्षानिर्वेशश्चास्य स्वसेयं सुभ्रुरभ्यनुज्ञाता मह्य-मार्यया' इति।

संस्कृत व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, गलति—गच्छति अतिक्रामति सतीत्यर्थः, वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ—वर्षवरो राजान्तःपुररक्षकः षण्ढः तेनोपनीतं प्रापितं देव्या प्रदत्तमित्यर्थः महार्हं महामूल्यं रत्नभूषणं पट्टनि-वसनं कौषेयवस्त्रं च याभ्यां तौ, आवां—कुमारो विश्रुतश्च, प्रविश्य—अन्त-र्गत्वा, तूष्णीं—मौनभावेनेत्यर्थः, अतिष्ठाव। देवी तु, पूर्वेद्युरेव—पूर्वस्मिन्नेव दिवसे, यथार्हं—यथायोग्यम्, अग्निसंस्कारं—दाहक्रियाम्, मालवाय—मालव-देशपतये, प्रचण्डवर्मणे—चण्डवर्मानुजाय, दत्त्वा, चण्डवर्मणे च, अश्मकेन्द्रोपधिकृ-ताम्—अश्मकेन्द्रस्य वसन्तभानोरुपधिना छलेन कृतां जनिताम्, एव, ताम् अवस्थां—प्रचण्डवर्ममरणघटनाम्, सन्दिश्य—वाचिकं प्रेष्य, उत्तरेद्युः—उत्तर-स्मिन् दिने, प्रत्युषस्येव—प्रभात एव, पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धैः—पूर्वसूचि-तनागरिकमन्त्रिसामन्तवृद्धैः, सह, अभ्येत्य—आगत्य, भगवतीम्—दुर्गाम्, अर्चयित्वा—पूजयित्वा, सर्वजनप्रत्यक्षं—सर्वेषां समक्षम्, परीक्षितकुक्षिवैजन्यं—परीक्षितं सम्यग् दृष्टं कुक्षेः अभ्यन्तरस्य वैजन्यं विजनता यस्य तथाभूतं, तत्, भवनं—मन्दिरं, विधाय—कृत्वा, दत्तदृष्टिः—दत्ता दृष्टिः येन तादृशः,.... पटीयांसं—महान्तम्, पटहशब्दम्—दुन्दुभिध्वनिम्, ...। अणुतररन्ध्रप्रविष्टेन —अणुतरेण अतिक्षुद्रेण रन्ध्रेण छिद्रेण प्रविष्टः तेन,....नादेन—शब्देन, अहं, दत्तसंज्ञः—दत्तसंकेतः, शिरसैव, उत्क्षिप्य—उत्थाप्य, सप्रतिमं—प्रतिमासहितं, अंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलम्—अंसलस्य बलवतः पुरुषस्य प्रयत्नेन आयासेन दुश्चलं चालयितुमशक्यम्, लोहपादपीठं—लोहमयचरणासनम्, उभयकरविधृतम्—उभयकराभ्यां विधृतम् अवलम्बितम्, एकपार्श्वम्, एकतः—बिलस्यैकपार्श्वे, निवेश्य—स्थापयित्वा, निरगमम्—बहिर्निः सृतः। कुमारं—भास्करवर्माणं, च, निरगमयम्—निष्कासितवान् ।.....प्रत्यक्षीभूय—सर्वजनसमक्षं निर्गत्य, प्रत्ययहृष्टदृष्टीः—प्रत्ययेन विश्वासेन हृष्टा सन्तुष्टा दृष्टिर्यासां ताः, स्पष्ट-रोमाञ्चं—स्पष्टाः रोमाञ्चाः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, उद्यताञ्जलि —उद्यताः अञ्जलयः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, रूढविस्मयं—रूढः

सञ्जातो विस्मयो यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, प्रणिपतन्तीः—प्रणमन्तीः, प्रकृतीः—प्रजाः, अभ्यधाम्—अवोचम्—विन्ध्यवासिनी, देवी, मन्मुखेन—मद्द्वारेणेत्यर्थः, युष्मान्, इत्थम्, आज्ञापयति—आदिशति, सकृपया—सानुकम्पया, मया, शार्दूलरूपेण—व्याघ्ररूपेण, तिरस्कृत्य—संगोप्य, अद्य, वः—युष्मभ्यम्, दत्तम्, एनं—कुमारम्, अद्यप्रभृति—अद्यारभ्य, मत्पुत्रतया—मत्पुत्रत्वेन, मन्दमातृपक्षः—मन्दः अल्पः क्षीण इत्यर्थः मातृपक्षो यस्य तादृशः, इति, (कृत्वा) परिगृह्णन्तु—स्वीकुर्वन्तु, भवन्तः। अपि च, दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठचनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मानं—दुर्घटा दुःसाध्या या कूटकोटिः कपटसमूहः तस्याः घटनापाटवेन योजनानैपुण्यन प्रकटं सुव्यक्तं शाठचं धूर्तता यस्य तादृशः निष्ठुरः निर्दयः अश्मकः वसन्तभानुः स एव घटः तस्य घट्टनः स्फोटनः नाशक इति यावत् आत्मा स्वरूपं यस्य तथाविधम्, माम्—अस्य—बालकस्य, रक्षितारं—रक्षकं, मन्यध्वम्—जानीत। रक्षानिर्वेशः—रक्षणपारिश्रमिकम्, अस्य—बालकस्य, इयं सुभ्रूः—सुष्ठुभ्रूयुक्ता सुन्दरीति यावत्, स्वसा—भगिनी, आर्यया—देव्या, मह्यम्, अभ्यनुज्ञाता—दातुं स्वीकृता।

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर आधी रात बीत जाने पर राजा के अन्तःपुर के रक्षक हिजड़े द्वारा लाये गये कीमती रत्नों के आभूषण तथा रेशमी वस्त्रों को धारण कर हम दोनों उसी बिल में प्रवेश करके चुपचाप बैठ गये। महारानी ने तो पहले ही दिन मालवपति प्रचण्डवर्मा को यथोचित दाहसंस्कार दिलवाकर, चण्डवर्मा को अश्मकेन्द्र (वसन्तभानु) के कपट से की गई (प्रचण्डवर्मा की हत्या रूप) उस अवस्था का सन्देश भेजकर, दूसरे दिन प्रातःकाल ही पहले ही से संकेत किये गये पुरवासियों, मन्त्रियों तथा सामन्तवृद्धों के साथ आकर, भगवती की पूजा करके, सब लोगों के सामने देवीमन्दिर के भीतरी भाग की निर्जनता की परीक्षा करके, लोगों के साथ दृष्टि लगाये हुए खड़ी रहकर, नगाड़े का बड़ा भारी शब्द कराया। अत्यन्त क्षुद्र छिद्र के द्वारा घुसे हुए उस शब्द से संकेत पाकर, मैं बलवान् पुरुष द्वारा प्रयत्न करने पर भी न उठाये जाने योग्य, लोहे के पाद-पीठ को प्रतिमा सहित सिर से ही उठाकर, दोनों हाथों से पकड़कर, एक सिरे को एक तरफ रखकर, निकल पड़ा और कुमार को निकाल लाया। अनन्तर पहले की भाँति दुर्गा का पूजन करके, किवाड़

खोलकर, प्रत्यक्ष होकर, मैंने, विश्वास के कारण प्रसन्न दृष्टि वाली और स्पष्ट रोमांच, उठी हुई अंजलि तथा आश्चर्यपूर्वक प्रणाम करती हुई प्रजाओं से कहा—'विन्ध्यवासिनी देवी मेरे मुँह से तुम लोगों को इस प्रकार आज्ञा देती हैं कि बाघिन के रूप से दया करके मैंने इस बालक को छिपाकर आज तुम्हें दे दिया है। (अतएव) आज से क्षीण मातृपक्ष वाले इस कुमार को मेरे पुत्र के रूप में आप लोग स्वीकार करें। और भी, दुःसाध्य कपट-समूह की योजना करने की निपुणता द्वारा प्रकट हुई धूर्तता वाले निर्दय वसन्तभानु रूपी घड़े को फोड़ने वाली आत्मा वाले मुझे इस (बालक) का रक्षक समझो। रक्षा के पारिश्रमिक के रूप में भगवती ने मुझे इसकी सुन्दर भौं वाली यह बहन दे दी है।

टिप्पणी—गलति—बीत जाने पर।√गल्+लट्—शतृ=गलन्, तस्मिन्। यह 'मध्यरात्रे' का विधेयविशेषण है। दोनों जगह 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी हुई है। **मध्यरात्रे**—दोपहर रात, आधी रात। मध्यं रात्रेः इति मध्यरात्रः (एकदेशितत्पुरुष स०), 'अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' इति सूत्रेण समासान्त अच्प्रत्ययः। **वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ**—अन्तः-पुर के रक्षक नपुंसक के द्वारा लाये गये बहुमूल्यक रत्नों के गहने तथा रेशमी वस्त्र पहनकर। रत्ननिर्मितानि भूषणानि इति रत्नभूषणानि (मध्य० स०)। पट्टानि निवसनानि इति पट्टनिवसनानि (कर्म० स०)। रत्नभूषणानि च पट्ट-निवसनानि च इति रत्नभूषणपट्टनिवसनानि (द्व० स०)। महार्हाणि च तानि रत्नभूषणपट्टनिवसनानि इति महार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनानि (कर्म० स०)। वर्षवरेण उपनीतानि वर्षवरोपनीतानि (तृ० त०), वर्षवरोपनीतानि महार्ह-रत्नभूषणपट्टनिवसनानि ययोः तौ वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ (ब० स०)। 'षण्ढो वर्षवरः' इत्यमरः। **तूष्णीम्**—मौन, चुपाचप। पूर्वेद्युः—पहले दिन। पूर्वस्मिन् इति पूर्व+एद्युस्। **यथार्हम्**—यथोचित। अर्हम् अनतिक्रम्य इति यथार्हम् (अव्य० स०)। **अग्निसंस्कारम्**—दाहकर्म। अग्नौ संस्कारः इति अग्नि संस्कारः (स० त०), तम्। **अश्मकेन्द्रोपधिकृताम्**—अश्मकपति (वसन्तभानु) के कपट से की गई। अश्मकेन्द्रस्य उपधिः इति अश्म-केन्द्रोपधिः (ष० त०), अश्मकेन्द्रोपधिना कृता इति अश्मकेन्द्रोपधिकृता (तृ० त०) ताम्। **सन्दिश्य**—संदेश देकर। **उत्तरेद्युः**—दूसरे दिन। उत्तर-

स्मिन् इति उत्तर+एद्युस्। **प्रत्युषस्येव**—तड़के ही। **पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धैः**—पहले से संकेत या इशारा दिये हुए नागरिकों, मंत्रियों तथा सामन्तवृद्धों के साथ। पौराश्च अमात्याश्च सामन्तवृद्धाश्च इति पौरामात्यसामन्तवृद्धाः (द्व० स०)। पूर्वं संकेतिताः इति पूर्वसंकेतिताः (सुप्सुपा स०), पूर्वसंकेतिताः पौरामात्यसामन्तवृद्धाः इति पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धाः (कर्म०स०), तैः। सहयोगे तृतीया। **अभ्येत्य**—पहुँचकर। अभि-आ√इ+क्त्वा—ल्यप्। **सर्वजनप्रत्यक्षम्**—सब लोगों के सामने। सर्वे च ते जनाः सर्वजनाः (कर्म० स०) सर्वजनानां प्रत्यक्षम् इति सर्वजनप्रत्यक्षम् (ष० त०)। **परीक्षितकुक्षिवैजन्यम्**—जिसकी कुक्षि भीतरी भाग की विजनता की परीक्षा कर ली गई थी। विगताः जनाः यस्मात् तत् विजनम् (प्रा० ब० स०), विजनस्य भावः वैजन्यम् विजन+ष्यञ्। कुक्षेः वैजन्यम् कुक्षिवैजन्यम् (ष० त०), परीक्षितं कुक्षिवैजन्यं यस्य तत् परीक्षितकुक्षिवैजन्यम् (ब० स०)। यह 'तद्भवनम्' का विशेषण है। तस्याः दुर्गायाः भवनम् तद्भवनम् (ष० त०)। **विधाय**—करके। वि√धा+कृ+क्त्वा—ल्यप्। **दत्तदृष्टिः**—जिसने दृष्टि दी थी अर्थात् जिसकी दृष्टि (उस मन्दिर पर) लगी हुई थी। दत्ता दृष्टिः यया सा दत्तदृष्टिः (ब० स०)। **पटीयांसम्**—महान्, बड़ा भारी। अतिशयेन पटुः इति पटीयान् पटु+ईयसुन्, तम्। **पटहशब्दम्**—नगाड़े का शब्द। पटहस्य शब्दः पटहशब्दः (ष० त०), तम्। **अकारयत्**—करवाया। **अणुतररन्ध्रप्रविष्टेन**—बहुत बारीक छिद्र के द्वारा प्रविष्ट। अतिशयेन अणु इति अणुतरम् अणु+तरप्, अणुतरं च तत् रन्ध्रम् इति अणुतररन्ध्रम् (कर्म० स०), अणुतररन्ध्रेण प्रविष्टः अणुतररन्ध्रप्रविष्टः (तृ० त०), तेन। **नादेन**—शब्द से। **दत्तसंज्ञः**—जिसको इशारा दिया गया था ऐसा। दत्ता संज्ञा यस्मै स दत्तसंज्ञः (ब० स०)। **सप्रतिमम्**—उठाकर। उद्√क्षिप्+क्त्वा—ल्यप्। **सप्रतिमम्**—प्रतिमा (देवी की मूर्ति) सहित। प्रतिमया सह वर्तमानं सप्रतिमम् (ब० स०)। **लोहपादपीठम्**—लोहे का बना हुआ पादपीठ=पैर रखने का स्थान=पावदान। लोहनिर्मितं पादपीठम् इति लोहपादपीठम् (मध्य० स०)। **अंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलम्**—बलशाली पुरुष के प्रयत्न से भी न हिलने वाला। अंस+लच् 'वत्सांसाभ्यां कामबले' इत्यनेन इति अंसल=बलवान्। अंसलश्चासौ पुरुषः इति अंसलपुरुषः (कर्म० स०),

अंसलपुरुषस्य प्रयत्नः इति अंसलपुरुषप्रयत्नः (ष० त०), तेन दुश्चलम् इति अंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलम् (तृ० त०)। दुःखेन चालियतुं शक्यम् इति दुश्चलम् दुस्√चल्+णिच्+खल्। 'बलवान् मांसलोंऽसलः' इत्यमरः। **उभयकरविधृतम्**—दोनों हाथों से पकड़ा हुआ। वि√धृ+क्त=विधृत। उभयौ करौ उभयकरौ (कर्म० स०), उभयकराभ्यां विधृतः इति उभयकरविधृतः। (तृ० त०), तम्। यह 'एकपार्श्वम्' का विशेषण है। **एकतः**—एक ओर। एक+तसिल्। **निवेश्य**—रखकर। नि√विश्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **निरगमयम्**—निकाल लिया। निर्√गम्+णिच्+लङ—मिप्। **यथापूर्वम्**—पहले की भाँति। पूर्वम् अनतिक्रम्य इति यथापूर्वम् (अव्य० स०)। **अर्चयित्वा**—पूजन करके। √अर्च्+णिच्+क्त्वा। **उद्घाटितकपाटः**—जिसने किवाड़ों को खोल दिया है ऐसा। उद्घाटितौ कपाटौ येन स उद्घाटितकपाटः (ब० स०)। **प्रत्यक्षीभूय**—(सबके) सामने होकर। अक्ष्णोः प्रति इति प्रत्यक्षः (अव्य० स०) समासान्तटच्प्रत्ययः। न प्रत्यक्षः अप्रत्यक्षः (न० त०), अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः भूत्वा इति प्रत्यक्षीभूय प्रत्यक्ष+च्वि, ईत्व√भू+क्त्वा—ल्यप्। **प्रत्ययहृष्टदृष्टीः**—विश्वास से प्रफुल्लित दृष्टि वाली। वह 'प्रकृतीः' का विशेषण है। प्रत्ययेन हृष्टा दृष्टयो यासां ताः (ब० स०), ताः। **स्पष्टरोमाञ्चम्**—जिसमें स्पष्ट रोमांच हो आया हो। स्पष्टाः रोमाञ्चाः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (ब० स०)। **उद्यताञ्जलि**—जिसमें अंजलि उठी हुई हो अर्थात् दोनों हाथ जोड़े। उद्यताः अञ्जलयः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (ब० स०)। **रूढविस्मयम्**—जिसमें आश्चर्य उत्पन्न हुआ हो। रूढः विस्मयो यस्मिन् तद् यथा स्यात् तथा (ब० स०) ये तीनों 'प्रणिपतन्तीः' के क्रियाविशेषण हैं। **प्रणिपतन्तीः**—प्रणाम करती हुई। प्र-नि√पत्+लट्—शतृ। **प्रकृतीः**—प्रजाओं को। **मन्मुखेन**—मेरे द्वारा। मम मुखम् इति मन्मुखम्। (ष० त०), तेन। **सकृपया**—कृपायुक्त। विद्यमाना कृपा यस्यां सा सकृपा (ब० स०), तया। **शार्दूलरूपेण**—व्याघ्र रूप से। शार्दूलस्य रूपम् (ष० त०), तेन। **तिरस्कृत्य**—छिपाकर। तिरस्√कृ+क्त्वा—ल्यप्। **वः**—तुम लोगों को। **अद्यप्रभृति**—आज से लेकर। **मत्पुत्रतया**—मेरे पुत्र होने के कारण। मम पुत्रः मत्पुत्रः (ष० त०), मत्पुत्रस्य भावः मत्पुत्रता मत्पुत्र+तल्+, टाप् तया। **मन्दमातृपक्षः**—जिसका मातृपक्ष क्षीण हो

गया है। यहाँ 'अमन्दमातृपक्षः' पाठ रखने पर अर्थ होगा 'जिसका मातृपक्ष बहुत ऊँचा है ऐसा'। **परिगृह्णन्तु**—स्वीकार करे। **दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मानम्**—दुःसाध्य कपट-समूह के कौशल से प्रकट हो गई है धूर्तता जिसकी ऐसे निर्दय अश्मकनरेश रूपी घट को फोड़ने वाला स्वरूप है जिसका ऐसे। यह 'माम्' का विशेषण है। दुर्घटानि च तानि कूटानि इति दुर्घटकूटानि (कर्म० स०), दुर्घटकूटानां कोटिः दुर्घटकूटकोटिः (ष० त०), दुर्घटकूटकोटीनाम् घटना इति दुर्घटकूटकोटिघटना (ष० त०), तस्यां पाटवम् इति दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवम् (स० त०), तेन प्रकटं शाठ्यं यस्य स दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यः (ब० स०), तादृशश्चासौ निष्ठुरश्च इति दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुरः (कर्म० स०), तादृशः अश्मकः इति दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकः (कर्म० स०), स एव घटः इति दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटः (रूपक कर्म० स०), तस्य घट्टनः आत्मा यस्य स दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मा (ब० स०), तम्। **रक्षितारम्**—रक्षक। √रक्ष्+तृन्=रक्षिता, तम्। **रक्षानिर्वेशः**—रक्षा करने का पारिश्रमिक या मजदूरी। रक्षायाः निर्वेशः (ष० त०)। **स्वसा**—बहन। **सुभ्रूः**—जिसकी सुन्दर भौंहें हों। सुष्ठु शोभनाः भ्रुवः यस्याः सा सुभ्रूः (ब० स०)। **अभ्यनुज्ञाता**—देने के लिए स्वीकृत हुई है। अभि-अनु√ज्ञा+क्त+टाप्। **आर्यया**—देवी विन्ध्यवासिनी ने।

श्रुत्वैतत् 'अहो भाग्यवान् भोजवंशः, यस्य त्वमार्यादत्तो नाथ' इत्यप्रीयन्त प्रकृतयः। सा तु वाचामगोचरां हर्षावस्थामस्पृशन्मे श्वश्रूः। तदहरेव च यथावदग्राहयन्मञ्जुवादिनीपाणिपल्लवम्। प्रपन्नायां च यामिन्यां सम्यगेव बिलं प्रत्यपूरयम्। अलब्धरन्ध्रश्च लोको नष्टमुष्टिचिन्तादिकथनैरभ्युपायान्तरप्रयुक्तैर्दिव्यांशतामेव मम समर्थयमानः, मदाज्ञां नात्यवर्तत। राजपुत्रस्यार्यापुत्र इति प्रभावहेतुः प्रसिद्धिरासीत्। तं च गुणवत्यहनि भद्राकृतमुपनाय्य पुरोहितेन पाठयन्नीतिं राजकार्याण्यन्वतिष्ठम्। अचिन्तयं च—'राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्, शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थानाम्, प्रभावेण प्रारम्भः, उत्साहेन निर्वहणम्। अतः पञ्चाङ्ग-

मन्त्रमूलः, द्विरूपप्रभावस्कन्धः, चतुर्गुणोत्साहविचपः, द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः, षड्गुणकिसलयः, शक्तिसिद्धिपुष्पफलश्च, नयवनस्पतिर्नेतुरुपकरोति। स चायमनेकाधिकरणत्वादसहायेन दुरुपजीव्यः। यस्त्वयमार्यकेतुर्नाम मित्रवर्म-मन्त्री स कोसलाभिजनत्वात्कुमारमातृपक्षो मन्त्रिगुणैश्च युक्तस्तन्मतिमवमत्यैव ध्वस्तो मित्रवर्मा, स चेल्लब्धः पेशलम्' इति।

संस्कृत व्याख्या— ··आर्यादत्तः—आर्यया देव्या दत्तः,····अप्रीयन्त—प्रीतिमापुः,····वाचामगोचराम्—अनिर्वाच्याम्, हर्षावस्थाम्—आनन्ददशाम्, अस्पृशत्—प्राप्तवती,····तदहरेव—तस्मिन्नेव दिने, यथावत्—यथाविधि,····प्रपन्नायाम्—उपस्थितायाम्, यामिन्यां—रात्रौ,····अलब्धरन्ध्रः—अप्राप्तच्छिद्रः अदृष्टदेवागारस्थबिल इत्यर्थः,····नष्टमुष्टिचिन्तादिकथनैः—नष्टस्य अदर्शनं गतस्य मुष्टौ करमध्ये चिन्ता नष्टानि वस्तूनि करे एव पश्यामीत्यादिकथनैः प्रकाशनैः, अभ्युपायान्तरप्रयुक्तैः—अन्योपायनिर्वर्तितैः; उपायान्तरेण नष्टमा-विष्कृत्य स्वमुष्टावेव पश्यामीति व्यापयतीति भावः, मम—मे, दिव्यांशतां—दिव्यपूरुषांशसम्भवत्वम्, एव, समर्थयमानः—सम्भावयन्, मदाज्ञां, नात्यवर्तत—नात्यक्रामत्। राजपुत्रस्य—भास्करवर्मणः, आर्यापुत्रः—देवीपुत्रः, इति—एवंरूपा, प्रसिद्धिः—विख्यातिः, प्रभावहेतुः—प्रतापकारणम् आसीत्। तं—राजकुमारं, च, गुणवति—शुभे, अहनि—दिने, भद्राकृतं—मुण्डितम्, उपनाय्य—उपनयनं कारयित्वा, पुरोहितेन—पुरोधसा, नीतिं—राजनीतिं, पाठयन्—अध्यापयन्, राजकार्याणि—शासनसम्बन्धिकार्याणि, अन्वतिष्ठम्—अकरवम्। ····शक्तित्रयायत्तं—शक्तित्रयाधीनम्, ····परस्परानुगृहीताः—अन्योन्यसहकृताः, कृत्येषु—कार्येषु, क्रमन्ते—प्रभवन्ति। मन्त्रेण—मन्त्रशक्तचा, हि, अर्थानां—कार्यवस्तूनां, विनिश्चयः—निर्णयः, प्रभावेण—प्रभुशक्त्या, प्रारम्भः—प्रवर्तनं कार्येष्विति शेषः, उत्साहेन—उत्साहशक्त्या, निर्वहणं—सिद्धिलाभः। अतः—अस्मात् कारणात्, पञ्चाङ्गमन्त्रमलः—पञ्च सहायादयः अङ्गानि यस्य तादृशः मन्त्रः मूलम् अङ्घ्रिः यस्य तादृशः, द्विरूपप्रभावस्कन्धः—द्विरूपः द्विगुणः द्विविधो वा कोषदण्डोभयजनितत्वादिति भावः प्रभावः स्कन्धः काण्ड इव यस्य तथा-भूतः, चतुर्गुणोत्साहविटपः—चतुर्गुणाः चतुरावृत्ताः चतुर्दिक्षु प्रसृता इति भावः उत्साहाः विक्रमबलानि एव विटपाः शाखा यस्य तथाविधः, द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः

—द्विसप्ततिः द्वाभ्यामधिका सप्ततिः तत्संख्याका इत्यर्थः प्रकृतयः स्वाम्यमात्यादयः पत्राणि यस्य तादृशः, षड्गुणकिसलयः—षट् गुणाः सन्धिविग्रहयानासनद्वैधसमाश्रयाः किसलयाः पल्लवाः इव यस्य तथाविधः, शक्तिसिद्धिपुष्पफलश्च—शक्तयः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः तिस्रः सिद्धयश्च शक्तित्रयसाध्याः भूहिरण्यसुहृत्प्राप्तिरूपास्तिस्रः यथाक्रमं पुष्पाणि फलानि च इव यस्य तथोक्तः, नयवनस्पतिः—नीतिवृक्षः, नेतुः—नायकस्य, उपकरोति—उपकारं करोति। स च—नीतिवृक्षः, अनेकाधिकरणत्वात्—बह्वाश्रयत्वात्, असहायेन—निःसहायेन, दुरुपजीव्यः—कष्टेन संरक्षणीयः।····कोसलाभिजनत्वात्—कोसलवंशोत्पन्नत्वात् कोसलदेशीयत्वात् वा कुमारमातृपक्षः—कुमारस्य राजपुत्रस्य मातृपक्षस्तत्पक्षीयः, ····तन्मतिं—तस्य प्रज्ञाम्, अवमत्यैव—अनादृत्यैव,, मित्रवर्मा, ध्वस्तः—क्षयं गतः, सः—आर्यकेतुः, चेत्—यदि, लब्धः—प्राप्तः (स्यात् तर्हि), पेशलं—सुन्दरम्।

हिन्दी अनुवाद—यह सुनकर 'अहा! भोज का वंश भाग्यवान् है, जिसे भगवती ने तुम जैसे अधिपति दिये हैं' यह कहकर प्रजायें प्रमुदित हुईं। वह मेरी सास तो अनिर्वचनीय आनन्दावस्था को प्राप्त हुई। उसी दिन उसने विधिपूर्वक मञ्जुवादिनी का करपल्लव मुझे पकड़वा दिया (अर्थात् मेरे साथ मञ्जुवादिनी का विवाह कर दिया)। रात हो जाने पर मैंने बिल को अच्छी तरह भर दिया। छिद्र (रहस्य) का पता न पाने वाले लोग खोई हुई वस्तु को, मुट्ठी में रखी हुई वस्तु को तथा किसको क्या चिन्ता है इत्यादि बातों को बता देने के कारण और अन्य उपायों के प्रयोग से मेरी दिव्य उत्पत्ति का समर्थन करते हुए मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते थे। 'यह भगवती का पुत्र है' इस प्रकार की प्रसिद्धि राजकुमार के प्रभाव (बढ़ने) का कारण हो गई। शुभ दिन में, मुंडन किये हुए उस (कुमार) का पुरोहित द्वारा उपनयन संस्कार कराकर, राजनीति पढ़ाता हुआ मैं राजकार्य करने लगा। मैंने सोचा—'राज्य तीन शक्तियों के अधीन रहता है। वे शक्तियाँ हैं—मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। ये तीनों परस्पर अनुगृहीत होकर (अर्थात् एक-दूसरे से सहयोग करके) कार्य सिद्ध करती हैं। मन्त्र-शक्ति से अर्थों (कर्तव्य कार्यों) का निर्णय होता है, प्रभावशक्ति से (कार्यों का) प्रारंभ होता है और उत्साहशक्ति से (कार्यों की)

सिद्धि होती है। अतएव नीतिरूपी वृक्ष, जिसका मल (सहाय आदि) पाँच अंगों वाला मन्त्र (मन्त्रणाशक्ति) है, जिसका स्कन्ध (तना) (कोश और दण्ड से उत्पन्न) दो प्रकार का प्रभाव है, जिसकी शाखायें चतुर्गुण (अर्थात् चारों दिशाओं में फैला हुआ) उत्साह है, जिसके पत्ते (स्वामी, अमात्य आदि) बहत्तर प्रकार की प्रकृतियाँ हैं, जिसकी कोंपलें (सन्धि, विग्रह आदि) छह गुण हैं और जिसके फूल-फल (प्रभाव, उत्साह तथा मन्त्र से उत्पन्न होने वाली) शक्तियाँ तथा (तीनों शक्तियों द्वारा भूमि, सुवर्ण आदि की प्राप्ति रूप) सिद्धियाँ हैं, नेता (राजा) का उपकार करता है। सो यह (नीतिवृक्ष) अनेक आश्रय वाला (या अनेक प्रकार का) होने के कारण निःसहाय व्यक्ति के द्वारा बड़े कष्ट से जीवित रखा जा सकता है। जो यह मित्रवर्मा का आर्यकेतु नामक मंत्री है, वह कोसल देश में उत्पन्न होने के कारण कुमार (भास्करवर्मा) के मातृपक्ष का है और मंत्री के गुणों से युक्त है। उसकी सलाह न मानने के कारण ही मित्रवर्मा विनष्ट हुआ। (अतएव) यदि वह मिल जाता तो बड़ा अच्छा होता'।

टिप्पणी—आर्यादत्तः—भगवती (विन्ध्यवासिनी) के द्वारा दिया हुआ। आर्यया दत्तः आर्यादत्तः (तृ० त०)। **अप्रीयन्त**—प्रसन्न हुईं।√प्री+लङ—झ—अन्त। **वाचामगोचराम्**—वाणी की अविषय अर्थात् अनिर्वचनीया। यह 'हर्षावस्थाम्' का विशषण है। वाचाम् अगोचरा इति वाचामगोचरा (अलुक् स०), ताम्। **हर्षावस्थाम्**—हर्षस्य अवस्था हर्षावस्था (ष० त०), ताम्। **अस्पृशत्**—स्पर्श किया अर्थात् प्राप्त हुई। **श्वश्रूः**—सास। **तदहरेव**—उसी दिन। तस्मिन् अहनि इति तदहः। यहाँ अव्यय की तरह प्रयुक्त हुआ है। **अग्राहयत्**—पकड़वा दिया।√ग्रह्+णिच्+लङ—तिप्। **मञ्जुवादिनीपाणिपल्लवम्**—मंजुवादिनी का पल्लव सदृश कोमल हाथ। पाणिः पल्लवम् इव इति पाणिपल्लवम् (उपमित स०), मञ्जुवादिन्याः पाणिपल्लवम् इति मञ्जुवादिनीपाणिपल्लवम् (ष० त०)। **प्रपन्नायाम्**—उपस्थित, प्राप्त। प्र√पद्+क्त+टाप्=प्रपन्ना, तस्याम्। **यामिन्याम्**—रात्रि में। **प्रत्यपूरयम्**—भर दिया, बन्द कर दिया। **अलब्धरन्ध्रः**—जिसने छिद्र=दोष या रहस्य नहीं पाया। न लब्धं रन्ध्रं येन स अलब्धरन्ध्रः (न० ब०)। **नष्टमुष्टिचिन्तादिकथनैः**—खोई हुई

वस्तु को, मुट्ठी में रखी हुई वस्तु को और कौन क्या सोच रहा है इत्यादि बातों को बता देने के कारण। नष्टं च मुष्टिश्च चिन्ता च इति नष्टमुष्टिचिन्ताः (द्व० स०), ताः आदौ येषां तानि नष्टमुष्टिचिन्तादीनि, तेषां कथनानि (ष० त०), तैः। अथवा अन्न की चिन्ता दूर हो गई (सुभिक्ष होगा) इत्यादि बातों के कहने से। नष्टा विलुप्ता या मुष्टिचिन्ता अन्नचिन्ता इत्यर्थः तदादीनां कथनैः। **अभ्युपायान्तरप्रयुक्तैः**—दूसरे उपायों के प्रयोग से। प्र√युज्+क्त भावे=प्रयुक्तानि। अन्ये अभ्युपायाः अभ्युपायान्तराणि (मयू० स०), तेषां प्रयुक्तानि अभ्युपायान्तरप्रयुक्तानि (ष० त०), तैः। **दिव्यांशताम्**—देवता के अंश से उत्पन्न होने के भाव को। दिवि स्वर्गे भवः दिव्यः=देवः, तस्य अंशः दिव्यांशः, दिव्यांशस्य भावः दिव्यांशता ताम्। **समर्थयमानः**—समर्थन करते हुए। सम्√अर्थ्+णिच्+लट्—शानच्, मुक्। **नात्यवर्तत**—उल्लंघन नहीं किया। **आर्यापुत्रः**—भगवती (विन्ध्यवासिनी) का पुत्र। **प्रभावहेतुः**—प्रताप का कारण। प्रभावस्य हेतुः प्रभावहेतुः (ष० त०)। **प्रसिद्धिः**—ख्याति। प्र√सिध्+क्तिन्। **गुणवति**—शुभ। गुणाः विद्यन्ते अस्मिन् इति गुणवत् गुण+मतु, वत्व, तस्मिन्। यह 'अहनि' का विशेषण है। **भद्राकृतम्**—जिसका मुण्डन कर दिया गया हो। भद्रं कृतम् इति भद्र+डाच् 'भद्राच्चेति वक्तव्यम्' इत्यनेन, भद्रा√कृ+क्त। **उपनाय्य**—यज्ञोपवीत संस्कार कराकर। उप√नी+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **पाठयन्**—पढ़ाता हुआ। √पठ्+णिच्+लट्—शतृ। **राजनीतिम्**—राजनीति को। **राजकार्याणि**—राजा के कार्य। राज्ञः कार्याणि राजकार्याणि। **अन्वतिष्ठम्**—किया। अनु√स्था+लङ्—मिप्। **शक्तित्रयायत्तम्**—तीन शक्तियों के अधीन। शक्तीनां त्रयम् शक्तित्रयम् (ष० त०), तस्य आयत्तम् (ष० त०)। **शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः**—शक्तियाँ तीन हैं—१ मन्त्रशक्ति समीचीन परामर्श (देने वाले अच्छे मन्त्रियों का होना), २ प्रभावशक्ति (चारों ओर प्रभाव) (रोआब, आतंक) (फैला रहे) और ३ उत्साहशक्ति (प्रत्येक कार्य को करने के लिए पर्याप्त उत्साह रखे, कभी निराश न हो)। मन्त्रश्च प्रभावश्च उत्साहश्च इति मन्त्रप्रभावोत्साहाः (द्व० स०)। **परस्परानुगृहीताः**—एक-सदूरे से अनुगृहीत या एक-दूसरे के सहायक परस्परेण अनुगृहीताः इति परस्परानुगृहीताः (तृ० त०)। **कृत्येषु**—कार्यों में। **क्रमन्ते**—

सफल होती हैं। √क्रम्+लट्—झ—अ 'वृत्तवृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' इत्यनेन अत्र आत्मनेपदत्वम्। **अर्थानां विनिश्चयः**—कार्यों का निर्णय, अर्थात् अमुक कार्य अवश्य करना है, ऐसा संकल्प। **प्रारम्भः**—कार्यों में प्रवृत्ति। **निर्वहणम्**—सिद्धिलाभ। **पञ्चाङ्गमन्त्रमूलः**—पाँच अंगों वाली मन्त्रशक्ति ही जिसका मूल (जड़) है। मन्त्रणा के पाँच अंग ये हैं—सहायाः साधनोपायाः विभागो देश-कालयोः। विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमुच्यते ॥ (कामन्दकः)। १ सहायाः—सहायक, २ साधनोपायाः—अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के साधन, ३ देशकालयोः विभागः—स्थान का विभाग तथा समय का विभाग, ४ विपत्तेः प्रतीकारः—विपत्ति को दूर करना और ५ सिद्धिः—कार्य में सफलता। पञ्चा-ङ्गश्चासौ मन्त्रश्च इति पञ्चाङ्गमन्त्रः (कर्म० स०), स एव मूलं यस्य स पञ्चाङ्गमन्त्रमूलः (ब० स०)। **द्विरूपप्रभावस्कन्धः**—दो रूप या प्रकार वाला प्रभाव ही है स्कन्ध (तना) जिसका ऐसा। प्रभाव दो प्रकार का होता है—एक कोश से उत्पन्न और दूसरा दंड से उत्पन्न। 'स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः। द्वे रूपे यस्य स द्विरूपः (ब० स०), द्विरूपश्चासौ प्रभावः द्विरूपप्रभावः (कर्म० स०), द्विरूपप्रभाव एव स्कन्धो यस्य स द्विरूप-प्रभावस्कन्धः (ब० स०)। **चतुर्गुणोत्साहविटपः**—चार गुणों वाला उत्साह ही जिसकी शाखायें हैं। चत्वारो गुणाः यस्य स चतुर्गुणः (ब० स०)। चतुर्गुण-श्चासौ उत्साहः चतुर्गुणोत्साहः (कर्म० स०), चतुर्गुणोत्साह एव विटपा यस्य स चतुर्गुणोत्साहविटपः। १ साम, २ दान, ३ दण्ड और ४ भेद रूप चार उपायों से साध्य होने के कारण उत्साह चतुर्गुण कहलाता है। **द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः**—बहत्तर प्रकृतियाँ ही जिसके पत्ते हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद् कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और नागरिक—ये आठ राज्यांग कहलाते हैं। इनमें से स्वामी को नायक होने के कारण और सुहृद् को बारह राजमण्डल के भीतर होने के कारण छोड़ दिया जाता है। शेष छह बचते हैं। इन छहों को १२ से गुणा करने पर (क्योंकि राजा के १२ भेद माने गये हैं) ७२ प्रकृतियाँ होती हैं। १२ राजा ये हैं:—'अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम्। अथारिमित्रमित्रञ्च विजिगीषोः पुरः-सराः। पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरः। आसारबलयोश्चैव विजिगीषो-स्तु पृष्ठतः ॥' विजिगीषोः पुरः सराः पञ्च, पृष्ठस्थाः पार्ष्णिग्राहः आक्रन्दः

पार्ष्णिग्राहासारः आक्रन्दासारः इति चत्वारः, विजिगीषुर्दशमः। 'अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः। अनुग्रहे संहतयोः समर्थो व्यस्तयोर्वधे।। मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः।।' द्विसप्ततिः प्रकृतयः (कर्म० स०), द्विसप्ततिप्रकृतय एव पत्राणि यस्य स द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः (ब० स०)। **षड्गुणकिसलयः**—छह गुण ही जिसकी कोंपलें हैं ऐसा छह गुण ये हैं—'सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं दैधमाश्रयः।' १ संधि (मेल), २ विग्रह (युद्ध), ३ यान (आक्रमण), ४ आसन (घेरा डालकर ताक में बैठे रहना), ५ द्वैध (फूट डालना या दुरंगी चाल चलना) और ६ आश्रय (किसी वलवान् राजा का सहारा लेना)। षड्गुणा एव किसलयानि यस्य स षड्गुणकिसलयः (ब० स०)। **शक्तिसिद्धिपुष्पफलः**—शक्तियाँ और सिद्धियाँ जिसके क्रमशः फूल और फल हैं। शक्तियाँ पूर्वोक्त हैं और सिद्धियाँ तीनों शक्तियों से प्राप्त—भूमि, हिरण्य और मित्रप्राप्ति रूप हैं। शक्तयश्च सिद्धयश्च इति शक्तिसिद्धयः (द्व० स०), शक्तिसिद्धय एव पुष्पफलानि यस्य स शक्तिसिद्धिपुष्पफलः (ब० स०)। **नयवनस्पतिः**—नीति रूपी वृक्ष। नय एव वनस्पतिः नयवनस्पतिः (कर्म० स०)। **नेतुः**—नेता का।√नी+तृन्=नेता, तस्य। अत्र कर्मणः सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी। **अनेकाधिकरणत्वात्**—अनेक आश्रयों वाला या अनेक प्रकार का होने के कारण। अनेकानि अधिकरणानि यस्य स अनेकाधिकरणः (ब० स०), तस्य भावः अनेकाधिकरणत्वम् अनेकाधिकरण+त्व, तस्मात्। **असहायेन**—जिसका कोई सहायक न हो ऐसे। अविद्यमानः सहायः यस्य स असहायः (न० ब०), तेन। **दुरुपजीव्यः**—जिसकी रक्षा कष्ट से की जा सकती है अथवा जीविका के लिए जिसका आश्रय कष्ट से लिया जा सकता है। दुःखेन उपजीवितुं शक्यः दुरुपजीव्यः दुर्-उप√जीव्+ण्यत्। **कोसलाभिजनत्वात्**—कोसलजनपदीय या कोसल वंश का होने के कारण। कोसलाः जनपदाः अभिजनः जन्म-भूमिः यस्य स कोसलाभिजनः (ब० स०), तस्य भावः कोसलाभिजनत्वम्, तस्मात्। **कुमारमातृपक्षः**—कुमार की माता के पक्ष का। कुमारस्य माता (ष० त०), कुमारमातुः पक्षः कुमारमातृपक्षः (ष० त०), सः अस्ति अस्य इति कुमारमातृपक्षः कुमारमातृपक्ष+अच्। **अवमत्य**—अनादर या अवहेलना करके। अव√मन्+क्त्वा—ल्यप्। **ध्वस्तः**—नष्ट।√ध्वंस्+क्त। **पेशलम्**—सुन्दर।

अथ नालीजङ्घं रहस्यशिक्षयम्—'तात, आर्यमार्यकेतुमेकान्ते ब्रूहि—'को न्वेष मायापुरुषो य इमां राज्यलक्ष्मीमनुभवति, स चायमस्मद्बालो भुजङ्गेनामुना परिगृहीतः। किमुद्गीर्येत ग्रस्येत वा' इति। स यद्वदिष्यति तदस्मि बोध्यः' इति। सोऽन्यदैवं मामावेदयत्—'मुहुरुपास्य प्राभृतैः, प्रवर्त्य चित्राः कथाः, संवाह्य पाणिपादम्, अतिविस्रम्भदत्तक्षणं तमप्राक्षं त्वदुपदिष्टेन नयेन। सोऽप्येवमकथयत्—'भद्र! मैवं वादीः। अभिजनस्य शुद्धिदर्शनम्, असाधारणं बुद्धिनैपुण्यम्, अतिमानुषं प्राणबलम्। अपरिमाणमौदार्यम्, अत्याश्चर्यमस्त्रकौशलम्, अनल्पं शिल्पज्ञानम्, अनुग्रहार्द्रं चेतः, तेजश्चाप्यविषह्यमभ्यमित्रीणम्, इत्यस्मिन्नेव संनिपातिनो गुणाः येऽन्यत्रैकैकशोऽपि दुर्लभाः। द्विषतामेष चिरबिल्वद्रुमः प्रह्वाणां तु चन्दनतरुः तमुद्धृत्य नीजस्मन्यमश्मकमिमं च राजपुत्रं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठितमेव विद्धि। नात्र संशयः कार्यः' इति।

संस्कृत व्याख्या—...रहसि—एकान्ते, अशिक्षयम्—उपादिशम्,...माया-पुरुषः—ऐन्द्रजालिकः,...अनुभवति—भुङ्क्ते,...अस्मद्बालः—अस्माकं राज-कुमारः, भुजङ्गेन—विटेन, अमुना—विश्रुतेन, परिगृहीतः—आविष्टः किम्, उद्गीर्येत—त्यज्येत, वा—अथवा, ग्रस्येत—भक्ष्येत,...बोध्यः—विज्ञाप्यः,... अन्यदा—अन्यदिवसे,...मुहुः—पुनः पुनः, प्राभृतैः—उपायनैः, उपास्य—आराध्य,...प्रवर्त्य—प्रस्ताव्य, पाणिपादम्—हस्तौ पादौ च, संवाह्य—मर्दयि-त्वा, अतिविस्रम्भदत्तक्षणम्—अतिविस्रम्भेण अतिविश्वासेन दत्तः अर्पितः क्षणः समयः वचनावसर इत्यर्थः येन तम्, तम्—आर्यकेतुम् त्वदुपदिष्टेन—त्वया भवता उपदिष्टेन कथितेन, नयेन—नीत्या, अप्राक्षम्—पृष्टवान्।...अभिजनस्य—कुलस्य, शुद्धिदर्शनम्—शुद्धेः नैर्मल्यस्य दर्शनं ज्ञापकम्, असाधारणम्—असामान्यम्, बुद्धिनैपुण्यम्—प्रज्ञापाटवम्, अतिमानुषम्—अलौकिकम्, प्राण-बलम्—प्राणानां सामर्थ्यम्, अपरिमाणम्—असीमम्, औदार्यम्—महत्त्वम्, अत्याश्चर्यम्—अत्यद्भुतम्, अस्त्रकौशलम्—अस्त्रचालननैपुण्यम्, अनल्पं—समधिकम्, शिल्पज्ञानं—कारुकौशलम्, अनुग्रहार्द्रम्,—अनुग्रहेण दयया आर्द्रं स्निग्धं, चेतः—चित्तम्, तेजः—प्रतापः, अविषह्यं—परैः सोढुमशक्यम्, अभ्य-मित्रीणम्—अमित्रमभिलक्ष्यीकृत्य गमनयोग्यं सामर्थ्येन शत्रूणां सम्मुखं गन्तुम-पराङ्मुखमित्यर्थः, अस्मिन्—विश्रुते इत्यर्थः, संनिपातिनः—एकत्रावस्थायिनः,

गुणाः, ये, अन्यत्र—अन्यस्मिन् पुरुषे,….दुर्लभाः—दुष्प्रापाः। एषः, द्विषतां—शत्रूणां (कृते), चिरबिल्वद्रुमः—करञ्जवृक्षः, प्रह्वाणां—नतानाम्, चन्दनतरुः, ….नीतिज्ञम्मन्यं—नीतिज्ञाभिमनिनम्, अश्मकम्—अश्मकेन्द्रम्, उद्धृत्य—उन्मूल्य,….विद्धि—अवगच्छ।..संशयः—संदेहः, कार्यः।

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर मैंने नालीजंघ को एकान्त में सिखाया—'तात! आर्य आर्यकेतु से एकान्त में कहो—'यह कौन मायावी पुरुष (जादूगर) है, जो इस राज्य-लक्ष्मी का उपभोग कर रहा है? इस धूर्त या सर्प ने हमारे बालक (राजकुमार) को पकड़ लिया है। क्या यह छोड़ेगा या निगल ही जाएगा?' (इस पर) वह जो बोले सो मुझे बता देना।' उस (नालीजंघ') ने दूसरे दिन मुझसे इस प्रकार कहा—(बार-बार) उपहारों से उस (आर्यकेतु) की सेवा करके, नाना प्रकार के वार्तालाप करके (उसके) हाथ-पैर दबाकर अत्यन्त विश्वास के साथ अवसर दिये जाने पर उससे मैंने तुम्हारे सिखाये हुए राजनीतिक तरीके से पूछा। उसने भी इस प्रकार कहा—'भद्र! ऐसा मत कहो। वंश की विशुद्धता, असाधारण बुद्धि-पटुता, अलौकिक प्राण-शक्ति, असीम उदारता, अत्यन्त अद्‌भुत अस्त्र चलाने की निपुणता, प्रचुर शिल्प (कला, कारीगरी) का ज्ञान, दया से आर्द्र चित्त, असह्य एवं शत्रुओं का सामना करने वाला तेज—ये गुण इसी (विश्रुत) में एकत्र होकर रह रहे हैं, जो दूसरे लोगों में एक-एक करके भी दुर्लभ हैं। यह शत्रुओं के लिए करञ्जवृक्ष और विनम्र पुरुषों के लिए चन्दनवृक्ष है। अपने को राजनीतिज्ञ मानने वाले उस अश्मकराज का उन्मूलन करके इस राजकुमार (भास्करवर्मा) को पिता के स्थान पर बैठा हुआ ही समझो। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी—**रहसि**—एकान्त में। **मायापुरुषः**—मायावी या ऐन्द्रजालिक पुरुष। मायामयः पुरुषः मायापुरुषः। (मध्य० स०)। **अस्मद्‌बालः**—हमारा बालक अर्थात् राजकुमार भास्करवर्मा। अस्माकं बालः अस्मद्‌बालः (ष० त)। **भुजङ्गेन**—धूर्त या सर्प ने। 'भुजङ्गो विटसर्पयोः' इत्यमरः। **उद्‌गीर्यते**—उगल दिया जाय या छोड़ दिया जाय। **ग्रस्येत**—निगल लिया जाय। **तदस्मि बोध्यः**—वह मैं बताया जाने योग्य हूँ। **अन्यदा**—दूसरे समय। अन्यस्मिन् काले इति अन्यदा अन्य+दा। **उपास्य**—आराधना या सेवा करके।

प्राभृतैः—उपहारों से। **प्रवर्त्य**—आरंभ कर या चलाकर। प्र√वृत्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **चित्राः कथाः**—अद्भुत या अनेक प्रकार की कथायें या बातें। **संवाह्य**—दबाकर। सम्√वह्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **पाणिपादम्**—हाथ-पैरों को। पाणी च पादौ च इति पाणिपादम् (समाहारद्वन्द्व) 'द्वन्द्वश्च प्राणि-तूर्यसेनाङ्गानाम्' इत्यनेन एकवद्भावः। **अतिविस्रम्भदत्तक्षणम्**—अत्यन्त विश्वास के साथ जिसने अवसर दिया है ऐसे को। अत्यन्तं विस्रम्भः अति-विस्रम्भः (प्रा० स०), अतिविस्रम्भेण दत्तः क्षणः येन स अतिविस्रम्भदत्तक्षणः (ब० स०)। तम्। **अप्राक्षम्**—पूछा। √प्रच्छ्+लुङ—मिप्। **त्वदुपदिष्टेन**—तुम्हारे बताये हुए। त्वया उपदिष्टः त्वदुपदिष्टः (तृ० त०), तेन। **नयेन**—नीति या तरीके से। **मैवं वादीः**—ऐसा मत कहो। यहाँ 'मा' के योग में 'वादीः' में लुङ लकार हुआ है और 'न माङ्योगे' सूत्र से अट् आगम का निषेध हुआ है। **अभिजनस्य**—वंश का। **शुद्धिदर्शनम्**—शुद्धता देखना। शुद्धेः दर्शनम् शुद्धिदर्शनम् (ष० त०)। **बुद्धिनैपुण्यम्**—बुद्धि की पटुता या चतुरता। बुद्धेः नैपुण्यम्, बुद्धिनैपुण्यम् (ष० त०)। **अतिमानुषम्**—अलौकिक। मनुष्याणां समूहः मानुषम् मनुष्य+अण्। अतिक्रान्तं मानुषम् इति अतिमानुषम् (प्रा० स०), 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इत्यनेन। **प्राणबलम्**—प्राण-शक्ति या शारीरिक बल। प्राणानां बलम् इति प्राणबलम् (ष० त०)। **अपरिमाणम्**—परिमाणरहित, असीम। न विद्यते परिमाणं यस्य तत् अपरिमाणम् (न० ब०)। **औदार्यम्**—उदारता। उदारस्य भावः औदार्यम् उदार+ष्यञ्। **अत्याश्चर्यम्**—अत्यन्त अद्भुत। अत्यन्तम् आश्चर्यम् इति अत्याश्चर्यम् (प्रा० स०)। **अस्त्रकौशलम्**—अस्त्र चलाने की दक्षता। अस्त्रेषु कौशलम् इति अस्त्रकौशलम् (स० त०)। कुशलस्य भावः कौशलम् कुशल+अण्। **अनल्पम्**—बहुत। न अल्पम् इति अनल्पम् (न० त०)। **शिल्पज्ञानम्**—कारीगरी या कलाओं का ज्ञान। शिल्पानां ज्ञानम् इति शिल्पज्ञानम् (ष० त०)। **अनुग्रहार्द्रम्**—दया से आर्द्र (गीला) या स्निग्ध। अनुग्रहेण आर्द्रम्, इति अनुग्रहार्द्रम् (तृ० त०)। **अविषह्यम्**—न सहा जा सकने वाला। विसोढुं शक्यम् विषह्यम् वि√सह्+यत्, न विषह्यम् अविषह्यम् (न० त०)। **अभ्यमित्रीणम्**—शत्रुओं का सामना करने वाला। अमित्राणि अभिमुखं गच्छति इति अभ्यमित्रीणम् अभि—अमित्र

+ख+ईन। **संनिपातिनः**—एकत्र अवस्थित। संनिपतितुं शीलमेषाम् इति संनिपातिनः सम्—नि√पत्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये। **एकैकशः**—एक-एक करके। एक+शस्, द्वित्व। **द्विषताम्**—शत्रुओं के लिए। √द्विष्+लट्—शतृ=द्विषन्तः, तेषाम्। **चिरबिल्वद्रुमः**—करंज या चिलबिल का पेड़। चिरबिल्वस्य द्रुमः इति चिरबिल्वद्रुमः (ष० त०)। **प्रह्वाणाम्**—विनम्रों के लिए। **नीतिज्ञम्मन्यम्**—अपने को नीतिज्ञ मानने वाले। आत्मानं नीतिज्ञं मन्यते इति नीतिज्ञम्मन्यः नीतिज्ञ√मन्+खश्, मुम् 'आत्ममाने खश्च' इत्यनेन, तम्। नीतिं जानातीति नीतिज्ञः नीति√ज्ञा+क। **पित्र्ये पदे**—पिता के स्थान पर। पितुः इदम् इति पित्र्यम् पितृ+यत्। **प्रतिष्ठितमेव**—स्थापित या बैठा हुआ ही। **विद्धि**—जानो।

तच्चापि श्रुत्वा भूयोभूयश्चोपधाभिर्विशोध्य तं मे मतिसहायमकरवम्। तत्सखश्च सत्यशौचयुक्तानमात्यान्विविधव्यञ्जनांश्च गूढपुरुषानुदपादयम्। तेभ्यश्चोपलभ्य लुब्धसमृद्धमत्युत्सिक्तमविधेयप्रायं च प्रकृतिमण्डलमलुब्धतामभिख्यापयन्, धार्मिकत्वमुद्भावयन्, नास्तिकान्कदर्थयन्, कण्टकान्विशोधयन्, अमित्रोपधीरपघ्नन्, चातुर्वर्ण्यं च स्वधर्मकर्मसु स्थापयन्, अभिसमाहरेयमर्थानर्थमूला हि दण्डविशिष्टकर्मारम्भाः। न चान्यदस्ति पापिष्ठं तत्र दौर्बल्यात्, इत्याकलय्य योगानन्वतिष्ठम्।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते विश्रुतचरितं नामाष्टम उच्छ्वासः।

संस्कृत व्याख्या—····उपधाभिः—परीक्षोपायैः, विशोध्य—परीक्ष्य, तम्—आर्यकेतुम्, मे—मम, मतिसहायं—बुद्धिसहायं, ···तत्सखः—तत्सहायः, सत्यशौचयुक्तान्—सत्यवादिनः निर्दोषांश्चेत्यर्थः, अमात्यान्—मन्त्रिणः, विविधव्यञ्जनान्—नानावेषधारिणः, गूढपुरुषान्—गुप्तचरान्, ···। तेभ्यः—गूढपुरुषभ्यः, ···लुब्धसमृद्धं—लोभोपहतं धनयुक्तं च, अत्युत्सिक्तम्—अतिगर्वितम्, अविधेयप्रायम्—प्रायेणावशीभूतम्, प्रकृतिमण्डलं—प्रजावर्गम्, अलुब्धताम्—अलोलुपतां स्वस्येति शेषः, अभिख्यापयन्—प्रकटयन्, ···कदर्थयन्—गर्हयन्, कण्टकान्—रिपून्, विशोधयन्—उन्मूलयन्, अमित्रोपधीः—अमित्राणां शत्रूणाम् उपधीः कपटानि, अपघ्नन्—विफलयन्, चातुर्वर्ण्यं—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादीनित्यर्थः, स्वधर्मकर्मसु—स्वस्ववर्णोचितधर्मकर्मानुष्ठानेषु, स्थापयन्—

नियोजयन् अभिसमाहरेयम्—सञ्चिनुयाम् अर्थान्, अर्थमूलाः—अर्थप्रधानाः, हि, दण्डविशिष्टकर्मारम्भाः—दण्डानां दण्डसाध्यानां विशिष्टानां च कर्मणाम् आरम्भाः उद्योगाः। तत्र—अर्थविषये, दौर्बल्यात्—दौर्बल्यं विहाय, अन्यत्—अपरम्, पापिष्ठं—निकृष्टं पापं दोषो वा, नास्ति, इति, आकलय्य—विविच्य, योगान्—नानाविधोपायान्, अन्वतिष्ठम्—आचरम्।

हिन्दी अनुवाद—वह भी सुनकर बार-बार अनेक परीक्षोपायों से परीक्षा करके उसको अपना बुद्धिसहायक (सलाहकार) बना लिया। उसकी सहायता से सत्य और पवित्रता से युक्त मन्त्रियों और अनेक वेशधारी गुप्तचरों को पैदा किया। उनके द्वारा लोभी तथा धनाढच, अत्यन्त गर्वित, प्रायः अवज्ञाकारी प्रजामण्डल का पता लगाकर (अपनी) निर्लोभता को प्रकट करता हुआ, धार्मिकता को उत्पन्न करता हुआ, नास्तिकों को पीड़ित करता हुआ, शत्रुओं के कपटों को विफल करता हुआ, चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म-कर्मों में लगाता हुआ मैं अर्थोपार्जन करूँ, क्योंकि दण्ड एवम् विशिष्ट कर्मों के आरंभ अर्थमूलक होते हैं (अर्थात् अर्थ से ही दण्ड और विशिष्ट कार्य सिद्ध होते हैं)। उसमें दुर्बलता से बढ़कर और दूसरा कोई पाप नहीं हैं—ऐसा सोचकर मैं विविध उपायों को करने लगा।

टिप्पणी—**उपधाभिः**—परीक्षा के उपायों से। **विशोध्य**—शोध करके, जाँच करके। वि√शुध्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **मतिसहायम्**—सलाहकार। मतौ सहायः मतिसहायः (स० त०), तम्। **सत्यशौचयुक्तान्**—सत्यता एवं पवित्रता से युक्त। सत्यं च शौचं च इति सत्यशौचे (द्व० स०), ताभ्यां युक्ताः (तृ० त०), तान्। **विविधव्यञ्जनान्**—अनेक प्रकार के वेश धारण करने वाले। विविधानि व्यञ्जनानि येषां ते विविधव्यञ्जनाः (ब० स०), तान्। **गूढपुरुषान्**—गुप्तचरों को। **उदपादयम्**—उत्पन्न किया, बनाया। **लुब्धसमृद्धम्**—लोभी और धनशाली। लुब्धं च तत् समृद्धं च इति लुब्धसमृद्धम्, (विशेषणोभयपदकर्म० स०)। **अत्युत्सिक्तम्**—अत्यन्त अभिमानी। **अविधेयप्रायम्**—जो प्रायः (बाहुल्येन) आज्ञाकारी या वशीभूत न हो। न विधेयम् अविधेयम् (न० त०), प्रायेण अविधेयम् इति अविधेयप्रायम् (सुप्सुपा स०)। **प्रकृतिमण्डलम्**—प्रजा-समूह। **अलुब्धताम्**—लोभी न होने के गुण को।

लुब्धस्य भावः लुब्धता लुब्ध+तल्+टाप् न लुब्धता अलुब्धता (न० त०), ताम्। **अभिख्यापयन्**—घोषित या प्रकट करता हुआ। अभि=ख्या+णिच्, पुक्+लट्—शतृ। **उद्भावयन्**—उत्पन्न करता हुआ या बढ़ाता हुआ। उद्=भू+णिच्+लट्—शतृ। **कदर्थयन्**—पीडित या धर्षित करता हुआ। कदर्थ+णिच्+लट्—शतृ। **कण्टकान्**—काँटों या शत्रुओं को। **विशोधयन्**—साफ करता हुआ, नष्ट करता हुआ। वि=शुध्+णिच्+लट्—शतृ। **अमित्रोपधीः**—शत्रुओं के कपटों को। अमित्राणाम् उपधयः इति अमित्रोपधयः (ष० त०), ताः। **अपघ्नन्**—विफल करता हुआ या कुचलता हुआ। अप=हन्++लट्—शतृ। **चातुर्वर्ण्यम्**—चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र)। चत्वारो वर्णाः चतुर्वर्णाः (कर्म० स०), चतुर्वर्णा एव चातुर्वर्ण्यम् चतुर्वर्ण+ष्यञ्। **स्वधर्मकर्मसु**—अपने-अपने धर्मों और कर्मों में। धर्माणि कर्माणि च इति धर्म-कर्माणि (द्व० स०), स्वस्य धर्मकर्माणि इति स्वधर्मकर्माणि (ष० त०), तेषु। **स्थापयन्**—प्रतिष्ठित या स्थिर करता हुआ, लगाता हुआ। **अभिसमाहरेयम्**—उपार्जन करूँ, इकट्ठा करूँ। अभि–सम्–आ=हृ+विधिलिङ—मिप्। **अर्थान्**—धनों को। **अर्थमूलाः**—जिनकी जड़ धन है ऐसे। अर्थात् धनप्रधान। अर्थः मूलं येषां ते अर्थमूलाः (ब० स०)। **दण्डविशिष्टकर्मारम्भाः**—दण्डों और विशिष्ट कार्यों के आरंभ। विशिष्टानि कर्माणि इति विशिष्टकर्माणि (कर्म० स०), दण्डाश्च विशिष्टकर्माणि च इति दण्डविशिष्टकर्माणि (द्व० स०), तेषाम् आरम्भाः इति दण्डविशिष्टकर्मारम्भाः (ष० त०)। **तत्र**—अर्थ के सम्बन्ध में। **पापिष्ठम्**—महापाप या महान् दोष। अतिशयेन पापम् इति पापिष्ठम् पाप+इष्ठन्। **दौर्बल्यात्**—दुर्बलता से। दुर्बलस्य भावः दौर्बल्यम् दुर्बल+ष्यञ्, तस्मात्। **आकलय्य**—विचार कर। आ=कल्+णिच्+ क्त्वा—ल्यप्। **योगान्**—उपायों को। 'योगः सन्नहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमरः। **अन्वतिष्ठम्**—किया। अनु=स्था+लङ—मिप्।

उत्तरपीठिकायामुपसंहारः

व्यचिन्तयं च—'सर्वोऽप्यतिशूरः सेवकवर्गो मयि तथानुरक्तो यथाज्ञया जीवितमपि तृणाय मन्यते। राज्यद्वितयसैन्यसामग्र्या च नाहमश्मकेशाद्वसन्त-भानोर्न्यूनो नीत्याविष्टश्च। अतो वसन्तभानुं पराजित्य विदर्भाधिपतेरनन्तवर्मण-

स्तनयं भास्करवर्माणं पित्र्ये पदे स्थापयितुमलमस्मि। अयं च राजसूनुर्भवान्याः पुत्रत्वेन परिकल्पितः। अहं चास्य साहाय्ये नियुक्त इति सर्वत्र किंवदन्ती सञ्जातास्ति। अद्यापि चैतन्मत्कपटकृत्यं न केनापि विदितम्। अत्रास्थाश्चास्मिन् भास्करवर्मणि राजतनये 'अयमस्मत्स्वामिनोऽनन्तवर्मणः पुत्रो भवान्याः प्रसादादेतद्राज्यमवाप्स्यति' इति बद्धाशा वर्तन्ते। अश्मकसैन्यं च राजसूनोर्भवानीसाहाय्यं विदित्वा 'दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः' इत्यस्माभिर्विग्रहे चलचित्तमिवोपलक्ष्यते। अत्रत्याश्च मौलाः प्रकृतयः प्रथममेव राजसुताभ्युदयाभिलाषिण्यः, इदानीं च पुनर्मया दानमानाद्यावर्जनेन विश्वासिता विशेषेण राजपुत्रमेवाभिकाङ्क्षन्ति। अश्मकेन्द्रान्तरङ्गाश्च भृत्या मदीयैर्विश्वास्यतमैः पुरुषैः प्रभूतां प्रीतिमुत्पाद्य मदाज्ञया रहसीत्युपजप्ताः—यूयमस्मन्मित्राणि, अतोऽस्माकं शुभोदर्कं वचो वाच्यमेव। अत्र भवान्या राजसूनोः साहाय्यकार्य विश्रुतं विश्रुतं नियुज्य तद्धस्तेनाश्मकेन्द्रस्य वसन्तभानोस्तत्पक्षे स्थित्वा ये चानेन सह योत्स्यन्ति तेषामप्यन्तकातिथिभवनम्। यावदश्मकेन्द्रेण स जन्यवृत्तिर्न जातस्तावदेनमनन्तवर्मतनयं भास्करवर्माणमनुसरिष्यथ। स वीतभयो भूयसीं प्रवृत्तिमासाद्य सपरिजनः सुखेन निवत्स्यति, न चेद्भवानीत्रिशूलवश्यो भविष्यति। भवान्या च ममेत्याज्ञप्तमस्ति यदेकवारं सर्वेषां कथय। अतोऽस्माकं युष्माभिः सह मैत्रीमवबुध्यास्मन्मुखेन सर्वेभ्योऽपि गदितम्। वार्तामिमामाकर्ण्य तेऽश्मकेन्द्रान्तरङ्गभृत्या राजसूनोर्भवानीवरं विदित्वा पूर्वमेव भिन्नमनस आसन्। विशेषतश्च मदीयमिति वचनं श्रुत्वा ते सर्वेऽपि मद्वशे समभवन्।

संस्कृत व्याख्या—···अतिशूरः—महापराक्रमी, सेवकवर्गः—अनुयायिसमूहः, ···जीवितमपि—प्राणानपि, तृणाय मन्यते—तृणवत् त्यक्तुमर्हति। राज्यद्वितयसैन्यसामग्र्या—राज्ययोर्द्वितयं द्वयं मित्रवर्मराज्यं प्रचण्डवर्मराज्यञ्च तस्य सैन्यसामग्र्या बलसम्पदा, न, अहम्, अश्मकेशात्—अश्मकपतेः, ····न्यूनः —हीनः, नीत्याविष्टः—नीतिपरायणः, च।···अलं—समर्थः,···किंवदन्ती —जनश्रुतिः, ···मत्कपटकृत्यं—मदीयच्छलव्यवहारं,····विदितं—ज्ञातम्। अत्रस्थः—अत्र वर्तमाना जनाः···बद्धाशाः—धृताशाः,···भवानीसाहाय्यं—देव्यपि सहायतां करिष्यतीति,···पुरः—अग्रे, ··अस्माभिर्विग्रहे—अस्माभिः सह युद्धे, चलचित्तमिव—दोलायमानमानसमिव भीतमिवेत्यर्थः, उपलक्ष्यते—

दृश्यते।····दानमानाद्यावर्जनेन—दानमानादिना आवर्जनेन प्रह्वीकरणेन वशीकरणेनेति यावत् ···प्रभूतां—प्रचुरां, ····रहसि—एकान्ते, इति—वक्ष्यमाणप्रकारम्, उपजप्ताः—भेदिताः, ···अस्माकम्—अस्माभिरित्यर्थः, शुभोदर्कं—कल्याणोत्तरफलम्, वचः—वचनं, वाच्यमेव—कथनीयमेव।···· साहाय्यकाय—सहायताकरणाय, विश्रुतं प्रख्यातं, विश्रुतं—तदाख्यं, नियुज्य, तद्धस्तेन—विश्रुतद्वारा···अनेन—विश्रुतेन राजसूनुना वा,···अन्तकातिथिभवनम्—अन्तकस्य यमस्य अतिथिभवनं यमालयगमनं, यावत्—यत्कालपर्यन्तं,···सः—विश्रुतः, जन्यवृत्तिः—युद्धप्रवृत्तः, ···सः—यो भास्करवर्माणमनुयास्यति, वीतभयः—अपगतभीः, भूयसीं—प्रभूतां, प्रवृत्तिं—सम्मानम् जीविकां वा, आसाद्य—प्राप्य, सपरिजनः—सकुटुम्बः, ···भवानीत्रिशूलवश्यः—भवान्या विनाश्यः, ··अवबुध्य—विचार्य, ··गदितं—कथितम्। आकर्ण्य—श्रुत्वा, ···· भिन्नमनसः—चञ्चलचित्ताः······।

हिन्दी अनुवाद—मैं सोचने लगा—'सभी महापराक्रमी सेवकवृन्द मुझमें इस प्रकार अनुरक्त हैं कि मेरी आज्ञा से वे (अपने) प्राणों को भी तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं (अर्थात् प्राणों को भी छोड़ सकते हैं)। दोनों राज्यों की सैन्य-सामग्री के कारण मैं अश्मकेन्द्र वसन्तभानु से न्यून नहीं हूँ। तथा नीतिपरायण भी हूँ। इसलिए वसन्तभानु को पराजित कर विदर्भनरेश अनन्तवर्मा के पुत्र भास्करवर्मा को पिता के स्थान पर बैठाने के लिए समर्थ हूँ। यह राजकुमार भी भगवती का पुत्र है और मैं इसकी सहायता करने के लिए नियुक्त हुआ हूँ—ऐसी किंवदन्ती सब जगह फैल गई है। आज भी मेरे इस कपटपूर्ण कार्य को किसी ने नहीं जाना। यहाँ के लोग इस राजकुमार भास्करवर्मा में 'यह हमारे स्वामी अनन्तवर्मा का पुत्र भगवती की कृपा से इस राज्य को प्राप्त करेगा' ऐसी आशा लगाये बैठे हैं। अश्मकेन्द्र की सेना राजकुमार की भवानी की सहायता समझकर 'दैवी शक्ति के आगे मानवी शक्ति बलवती नहीं होती है' ऐसा सोचकर हमारे साथ युद्ध करने में चंचलचित्त (भयभीत) दिखाई दे रही है। यहाँ की वंश-परम्परागत प्रजायें पहले ही से राजकुमार के अभ्युदय की अभिलाषी रही हैं और इस समय मेरे द्वारा दान, सम्मान आदि के वशीकरण से विश्वस्त होकर विशेषरूप से राजकुमार को ही चाहती हैं। अश्मन्द्र के

अन्तरंग सेवक मेरे अत्यन्त विश्वसनीय पुरुषों द्वारा प्रचुर प्रेम बढ़ाकर मेरी आज्ञा से एकान्त में यह कहकर फोड़ लिये गये हैं–'तुम लोग हमारे मित्र हो, इसलिए हमें भविष्य में कल्याण करने वाली बात कहनी ही चाहिए। भगवती (दुर्गा) ने इस राजकुमार की सहायता के लिए सुप्रसिद्ध विश्रुत को नियुक्त किया है, इसलिए अश्मकपति वसन्तभानु के पक्ष में रहकर जो व्यक्ति इस (विश्रुत) के साथ युद्ध करेंगे वे यमराज के अतिथि बनेंगे। जब तक वह अश्मकेन्द्र के साथ युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुआ है तब तक तुम लोग अनन्तवर्मा के पुत्र इस भास्करवर्मा का अनुसरण कर लो। (जो ऐसा करेगा) वह निर्भय होकर प्रचुर सम्मान या जीविका प्राप्त करके कुटुम्ब सहित सुख से निवास करेगा; अन्यथा उसे भवानी के त्रिशूल का वशीभूत होना पड़ेगा। भवानी ने मुझे आज्ञा दी है कि तुम एक बार सबसे कह दो। इसलिए तुम लोगों के साथ हमारी मित्रता समझकर हमारे मुख से सब लोगों को कहलाया है। यह बात सुनकर अश्मकपति के अन्तरंग सेवकगण राजकुमार के भवानी के दिये हुए वरदान को जानकर पहले ही से अन्यमनस्क हो रहे थे; विशेषकर मेरा यह वचन है—यह सुनकर वे सब भी मेरे वश में हो गए।

टिप्पणी—अतिशूरः—महान् वीर। अत्यन्तं शूरः वा शूरम् अतिक्रान्तः अतिशूरः (प्रा० स०)। **तृणाय मन्यते**—तृण के समान तुच्छ समझता है। 'तृणाय' में 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु' सूत्र से चतुर्थी हुई है। **राज्य-द्वितयसैन्यसामग्र्या**—दोनों राज्यों अर्थात् मित्रवर्मा और प्रचण्डवर्मा की सैन्य-सम्पदा या सैनिक सामग्री से। **न्यूनः**—कम, घटिया। **नीत्याविष्टः**—नीति से सम्पन्न, नीतिपरायण। नीत्या आविष्टः नीत्याविष्टः (तृ० त०)। **पुत्रत्वेन परिकल्पितः**—पुत्र रूप से माना गया है। **साहाय्ये**—सहायता में। सहायस्य भावः साहाय्यम् सहाय+ष्यञ्, तस्मिन्। **मत्कपटकृत्यम्**—मेरा कपट पूर्ण कार्य अर्थात् भास्करवर्मा को भवानी ने व्याघ्री रूप से बचाया है, अत-एव वह भवानी का पुत्र है, मुझे उसकी रक्षा के लिए भवानी ने नियुक्त किया है इत्यादि बातें। **बद्धाशाः**—आशा धारण किये या लगाये हुए। बद्धा आशा यैः ते बद्धाशाः (ब० स०) **दैव्याः**—देव या देवी की। देवस्य देव्याः वा इयम् इति दैवी देव वा देवी+अण्+ङीप्, तस्याः। **मानवी**—मनुष्य की।

मानवस्य इयम् मानवी मानव+अण्+ङीप्। **चलचित्तम्**—जिसका चित्त दोलायमान घबराया हुआ हो। चलं चित्तं यस्य तत् चलचित्तम् (ब० स०) **राजसुताभ्युदयाभिलाषिण्यः**—राजकुमार की उन्नति चाहने वाली। राज्ञः सुतः राजसुतः (ष० त०), तस्य अभ्युदयः (ष० त०), राजसुताभ्युदयम् अभिलषितुं शीलमासाम् इति राजसुताभ्युदय-अभि=लष्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये, उपपद स०, ङीप्=राजसुताभ्युदयाभिलाषिण्यः। **दानमानाद्यावर्जनेन**—दान और सम्मान आदि के आकर्षण से या दान और सम्मान आदि के द्वारा तुष्टीकरण (की नीति)। दानं च मानं च इति दानमाने (द्व० स०), ते आदौ येषां तानि दानमानादीनि (ब० स०), तान्येव आवर्जनम् (कर्म० स०) वा तैः आवर्जनम् (तृ० त०), तेन। **विश्वासिताः**—जिन्हें विश्वास दिलाया गया हो। वि√ श्वस्+णिच्+क्त। **विश्वास्यतमैः**—अत्यन्त विश्वसनीय वि=श्वस्+ण्यत्√ विश्वास्य। अतिशयेन विश्वास्यः विश्वास्यतमः विश्वास्य+तमप्, तैः। **प्रभूताम्**—अत्यधिक। **उपजप्ता**—फूट डाल दिये गये फोड़ लिये गये। उप√ जप्+क्त। **शुभोदर्कम्**—शुभ भावी फल, परिणाम में कल्याणकारक: **वाच्यम्**—कहने योग्य। √वच्+ण्यत्। **साहाय्यकाय**—सहायता के लिये। सहायस्य भावः साहाय्यम्, साहाय्यमेव साहाय्यकम् साहाय्य+कन् स्वार्थे। **अन्तकातिथिभवनम्**—यमराज का अतिथि होना, मृत्यु को प्राप्त करना। अन्तकस्य अतिथिभवनम् (ष० त०)। **जन्यवृत्तिः**—युद्ध में प्रवृत्त। जन्ये संग्रामे वृत्तिः वर्तनं यस्य स जन्यवृत्तिः (ब० स०)। **वीतभयः**—निर्भय। वीतं भयं यस्य स वीतभयः (ब० स०)। **भूयसीम्**—अत्यधिक। **प्रवृत्तिम्**—सम्मान या जीविका को। **आसाद्य**—पाकर। आ√सद्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **सपरिजनः**—कुटुम्ब-परिवार सहित। परिजनेन सहितः सपरिजनः (ब० स०)। **भवानीत्रिशूलवश्यः**—दुर्गा के त्रिशूल के अधीन अर्थात् भवानी द्वारा विनाश को प्राप्त। **अवबुध्य**—जानकर। अव=बुध्+क्त्वा—ल्यप्। **अश्मकेन्द्रान्तरङ्गभृत्याः**—अश्मकराज के अन्तरंग सेवकगण। अन्तरङ्गाः भृत्याः (कर्म० स०)। अश्मकस्य इन्द्रः अश्मकेन्द्रः (ष० त०), अश्मकेन्द्रस्य अन्तरङ्गभृत्याः अश्मकेन्द्रन्तरङ्गभृत्याः (ष० त०),। **भिन्नमनसः**—चंचल या फोड़े हुए चित्त वाले। भिन्नानि मनांसि येषां ते भिन्नमनसः (ब० स०)।

एनं सर्वमपि वृत्तान्तमवबुध्याश्मकेशेन व्यचिन्ति—'यद्राजसूनोर्मौलाः प्रजास्ताः सर्वा अप्येनमेव प्रभुमभिलषन्ति। मदीयश्च बाह्य आभ्यन्तरो भृत्यवर्गो भिन्नमना इव लक्ष्यते। एवं यद्यहं क्षमामवलम्ब्य गृह एव स्थास्यामि तत उत्पन्नोपजापं स्वराज्यमपि परित्रातुं न शक्ष्यामि। अतो यावता भिन्नचित्तेन मदवबोधकं प्रकटयता मद्बलेन सह मिथोवचनं न संजातं तावत्तैव तेन साकं विग्रहं रचयामि इत्येवं विहिते सोऽवश्यं मदग्रे क्षणमवस्थास्यति' इति निश्चित्यान्यायेन परराज्याक्रमणपातकप्रेरितः ससैन्यो मृत्युमुखमिवास्मत्सैन्यमभ्ययात्। तमभ्यायान्तं विदित्वा राजपुत्रः पुरोऽभवत्। अतोऽश्मकेन्द्रमेव तुरगाधिरूढो यान्तमभ्यसरम्। तावत्सर्वा एव तत्सेना 'यदयमेतावतोऽपरिमितस्यास्मत्सैन्यस्योपर्येक एवाभ्यागच्छति तत्र भवानीवर एवासाधारणं कारणं नान्यत्' इति निश्चित्यालेख्यलिखिता इवावस्थिताः। ततो मयाभिपत्य सङ्गराय समाहूतो वसन्तभानुः समेत्य मामसिप्रहारेण दृढमभ्यहनत्। अहं च शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः प्रतिप्रहारेण तं प्रहृत्यावकृत्तमश्मकेन्द्रशिरोऽवनौ विनिपात्य तत्सैनिकानवदम्—'अतः परमपि ये युयुत्सवो भवन्ति ते समेत्य मया युध्यन्ताम्। न चेद्राजतनयचरणप्रणामं विधाय तदीयाः सन्तः स्वस्ववृत्त्युपभोगपूर्वकं निजान्निजानधिकारान्निःशङ्कं परिपालयन्तः सुखेनावतिष्ठन्तु' इति। मद्वचनश्रवणानन्तरं सर्वेऽप्यश्मकेन्द्रसेवकाः स्वस्ववाहनात्सहसावतीर्य राजसूनमानम्य तद्वशवर्तिनः समभवन्। ततोऽहं तदश्मकेन्द्रराज्यं राजसूनुसाद्विधाय तद्रक्षणार्थं मौलान्स्वानधिकारिणो नियुज्यात्मीभूतेनाश्मकेन्द्रसैन्येन च साकं विदर्भानभ्येत्य राजधान्यां तं राजतनयं भास्करवर्माणमभिषिच्य पित्र्ये पदे न्यवेशयम्।

संस्कृत व्याख्या—...अश्मकेशेन—अश्मकपतिना, व्यचिन्ति—आलोचि,... मौलाः प्रजाः—प्रधानप्रकृतयः, ...एनमेव—भास्करवर्माणमेव, प्रभुं—स्वामिनम्, अभिलषन्ति—वाञ्छन्ति। ...भिन्नमनाः—चलचित्त, इव, लक्ष्यते—दृश्यते। ...क्षमामवलम्ब्य—युद्धमकृत्वेत्यर्थः,...उत्पन्नोपजापं—जातभेदम्, ...परित्रातुं—रक्षितुं, ...भिन्नचित्तेन—उपजप्तमनसा, मदवबोधकं—मम हृदयज्ञापकं वचनं, प्रकटयता—प्रकाशयता, मद्बलेन—मम सैन्येन, मिथोवचनं,—परस्परभेदवचनं,...तेन—विश्रुतेन, साकं—सह, विग्रहं—युद्धं, ...विहिते

—कृते, ...सः—विश्रुतः, परराज्याक्रमणपातकप्रेरितः—परस्य अनन्तवर्मणः राज्यस्य आक्रमणम् अतिक्रमणं ग्रहणार्थमवरोधः इत्यर्थः तदेव पातकं पापं तेन प्रेरितः, ससैन्यः—सेनासहितः, ...अभ्ययात्—आक्रामत्। । ...पुरः—अग्रे अग्रसर इत्यर्थः, ...तुरगाधिरूढः—अश्वारूढः, ...अभ्यसरम्—अभिमुखमगच्छम्। ...तत्सेनाः—तस्य अश्मकेन्द्रस्य सेनाः, ...अपरिमितस्य—असंख्यस्य, ...एकः—एकाकी, ...आलेख्यलिखिताः—चित्रार्पिताः, ...संगराय—युद्धार्थम्, ...असिप्रहारेण—खड्गप्रहारेण, दृढम्, अभ्यहनत्—आहतवान्। अहं, च, शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः—शिक्षाविशेषेण शिक्षानैपुण्येन विफलितः व्यर्थीकृतः तस्य वसन्तभानोः असिप्रहारो येन तथाभूतः, ...प्रतिप्रहारेण—प्रत्याघातेन, तं, प्रहृत्य—आघातं कृत्वा, अवकृत्तं—छिन्नम्, ...न चेत्...अन्यथा, ...तदीयाः—राजपुत्रपक्षीयाः, ...आनम्य—प्रणम्य, ...राजसूनुसात्,—राजपुत्राधीनम्, ...मौलान्—प्रधानान्, स्वान्—आत्मीयान्, ...आत्मीभूतेन—स्ववशीभूतेन, पित्र्ये पदे—पितृसिंहासने, न्यवेशयम्—अस्थापयम्।

हिन्दी अनुवाद—यह सब वृत्तान्त जानकर अश्मकपति ने सोचा—कि राजपुत्र की जितनी प्रमुख प्रजायें हैं वे सब उसी को स्वामी बनाना चाहती हैं मेरे बाहरी और भीतरी सेवकगण फोड़े हुए मन वाले या अन्यमनस्क की तरह दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार यदि मैं क्षमा का अवलम्बन लेकर (शान्ति रखकर) घर में ही बैठा रहूँगा तो उसके द्वारा फूट डाले गये अपने राज्य को भी नहीं बचा सकूँगा। इसलिए जब तक मेरे हृदय की बात बता देने वाली मेरी अन्यमनस्क सेना के साथ (शत्रु की) परस्पर बातचीत नहीं होती तब तक मैं उस (विश्रुत) के साथ युद्ध छेड़ देता हूँ। ऐसा करने पर वह अवश्य ही मेरे आगे क्षण भर खड़ा होगा। यह निश्चय करके अन्याय से दूसरे के राज्य पर आक्रमण करने के पाप से प्रेरित होकर वह सेना सहित मृत्यु के मुख की तरह हमारी सेना की ओर आया। उसको आये हुए जानकर राजकुमार (भास्करवर्मा) अग्रसर हो गया। इसलिए मैं घोड़े पर चढ़कर जाते हुए अश्मकपति की ओर बढ़ा। तब उसकी सारी सेना 'जो यह हमारी इतनी अपरिमित सेना के ऊपर अकेला ही टूट पड़ा है, इसमें भवानी का वरदान

ही असाधारण कारण है, दूसरा नहीं'। यह निश्चय करके चित्रलिखित के समान खड़ी रही।

तदनन्तर मैंने पास जाकर वसन्तभानु को युद्ध के लिए ललकारा। उसने समीप आकर मुझ पर तलवार का कठिन प्रहार किया। मैंने भी शस्त्रशिक्षा विशेष से उसके खड्गप्रहार को विफल कर दिया तथा बदले के प्रहार द्वारा उस पर प्रहार करके कटे हुए अश्मकपति के सिर को भूमि पर गिराकर उसके सैनिकों से कहा—'इसके वाद भी जो युद्ध करने के इच्छुक हों वे पास आकर मेरे साथ युद्ध करें। अन्यथा राजपुत्र के चरणों में प्रणाम करके उसके (व्यक्ति) होकर अपनी-अपनी वृत्ति का उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकारों का निर्भयतापूर्वक पालन करते हुए सुख से रहें'। मेरे वचनों को सुनने के बाद अश्मकेन्द्र के सभी सेवक अपनी-अपनी सवारी से एकाएक उतर कर राजपुत्र को प्रणाम करके उसके अधीन हो गए। तत्पश्चात् मैंने उस अश्मकपति के राज्य को राजपुत्र के अधीन करके उसकी रक्षा के लिए अपने प्रधान अधिकारियों को नियुक्त करके वशीभूत अश्मकपति की सेना के साथ विदर्भ देश में आकर राजधानी में उस राजपुत्र भास्करवर्मा को अभिषिक्त करके पिता के पद पर बैठा दिया।

टिप्पणी—व्यचिन्ति—सोचा, विचारा। वि=चिन्त्+लुङ कर्मणि, त। **भिन्नमनाः**—जिसके मन को फोड़ लिया गया हो या उच्चाटन कर दिया गया हो। भिन्नं मनः यस्य स भिन्नमनाः (ब० स०)। यह 'भृत्यवर्गः' का विशेषण है। **उत्पन्नोपजापम्**—जहाँ भेदभाव या षड्यन्त्र किया गया हो। उत्पन्नः उपजापः यस्मिन् तत् उत्पन्नोपजापम् (ब० स०)। यह 'स्वराज्यम्' का विशेषण है। **मदवबोधकम्**—मेरा हार्द भाव बताने वाला या मेरी सेना आदि की सूचना देने वाला वचन। मम अवबोधकम् मदवबोधकम् (ष० त०)। **प्रकटयता**—प्रकाशित करते हुए। प्र√कट्+णिच्+शतृ√प्रकटयत्, तेन। **विग्रहम्**—युद्ध। **परराज्याक्रमणपातकप्रेरितः**—दूसरे के राज्य पर आक्रमण करने के पाप से प्रेरित। परस्य राज्यम् (ष० त०), तस्मिन् आक्रमणम् (स० त०), तदेव पातकम् (कर्म० स०), तेन प्रेरितः (तृ० त०)। कहीं 'परराज्यक्रमणपाकप्रेरितः' पाठ है। उसकी व्याख्या होगी—परराज्यस्य क्रमणम् अन्यायेन ग्रहणम्

तस्य पाकः परिणामः पापमित्यर्थः तेन प्रेरितः। दूसरे के राज्य को अन्याय-पूर्वक ग्रहण करने के परिणाम से प्रेरित। **पुरः**—आगे से या अग्रेसर। **तुरगाधिरूढः**—घोड़े पर चढ़ा हुआ। तुरगे अधिरूढः तुरगाधिरूढः (स० त०)। **अभ्यसरम्**—सामने गया। अभि=सृ+लङ—मिप्। **आलेख्यलिखिताः**—चित्र में लिखी हुई। आलेख्ये लिखिताः आलेख्यलिखिताः (स० त०)। **अभिगम्य**—पास पहुँचकर। **शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः**—जिसने शिक्षा की निपुणता से विफल कर दिया है उसकी तलवार की चोट को ऐसा। असेः प्रहारः असिप्रहारः (ष० त०), तस्य असिप्रहारः तदसिप्रहारः (ष० त०)। शिक्षायाः विशेषः शिक्षाविशेषः (ष० त०), शिक्षाविशेषेण विफलितः तदसिप्रहारो येन स शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः (ब० स०)। **अवकृत्तम्**—कटा हुआ। अव=कृत्+क्त। **विनिपात्य**—गिराकर। वि—नि=पत्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। **युयुत्सवः**—युद्ध करने के इच्छुक। योद्धुमिच्छवः युयुत्सवः=युध्+सन्+उ। **स्वस्ववृत्त्युपभोगपूर्वकम्**—अपनी-अपनी वृत्ति के उपभोग के साथ। स्वश्च स्वश्च इति स्वस्वौ (द्व० स०), स्वस्वयोः वृत्तिः स्वस्ववृत्तिः (ष० त०), तस्याः उपभोगः (ष० त०), स्वस्ववृत्त्युपभोगः पूर्वो यस्य तत् स्वस्ववृत्त्युपभोगपूर्वकम् (ब० स०), कप्। क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया नपुंसकता च। यह 'परिपालयन्तः' का विशेषण है। **निःशङ्कम्**—बे-खटके, निर्भयतापूर्वक। निर्गता शङ्का यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा (ब० स०)। यह भी 'परिपालयन्तः' का क्रियाविशेषण है। **राजसूनुसात्**—राजपुत्र के अधीन। राज्ञः सूनुः राजसूनुः (ष० त०), राजसूनोः अधीनम् इति राजसूनुसात् राजसूनु+सात्। **अभिषिच्य**—राज्याभिषेक करके। अभि√सिच्+क्त्वा—ल्यप् 'उपसर्गात् सुनोति' इत्यादिना सस्य षत्वम्। **न्यवेशयम्**—बैठा दिया। नि√विश्+णिच्+लङ—मिप्।

एकदा च मात्रा वसुमत्या सहावस्थितं तं राजानं व्यजिज्ञपम्—'मयैकस्य कार्यस्यारम्भश्चिकीर्षितोऽस्ति। स यावन्न सिध्यति तावन्मया न कुत्राप्येकत्रावस्थातुं शक्यम्। अत इयं मद्भार्या त्वद्भगिनी मञ्जुवादिनी कियन्त्यहानि युष्मदन्तिकमेव तिष्ठतु। अहं च यावदिष्टजनोपलम्भः कियन्तमप्यनेहसं भुवं विभ्रम्य तमासाद्य पुनरत्र समेष्यामि' इत्याकर्ण्य मात्रानुमतेन राज्ञा-

हमगादि— 'यदेतदस्माकमेतद्राज्योपलम्भलक्षणस्यैतावतोऽभ्युदयस्यासाधारणो हेतुर्भवानेव। भवन्तं विना क्षणमप्यस्माभिरियं राज्यधूर्न निर्वाह्या। अतः किमेवं वक्ति भवान्' इत्याकर्ण्य मया प्रत्यवादि—'युष्माभिरयं चिन्तालवोऽपि न चित्ते चिन्तनीयः। युष्मद्गृहे यः सचिवरत्नमार्यकेतुरस्ति स ईदृग्विधाना-मनेकेषां राज्यानां धुरमुद्वोढुं शक्तः। ततस्तं तत्र नियुज्याहं गमिष्यामि' इत्यादिवचनसन्दोहैः प्रलोभितोऽपि सजननीको नृपो ऽनेकैराग्रहैर्मां कियन्त-मपि कालं प्रयाणोपक्रमान्न्यवर्तयत्। उत्कलाधिपतेः प्रचण्डवर्मणो राज्यं मह्यं प्रादात्। अहं च तद्राज्यमात्मसात्कृत्वा राजानमामन्त्र्य यावत्त्वदन्वे-षणाय प्रयाणोपक्रमं करोमि तावदेवाङ्गनाथेन सिंहवर्मणा स्वसाहाय्यायाकारितो ऽत्र समागतः पूर्वपुण्यपरिपाकात्स्वामिना समगंसि।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते विश्रुतचरितं समाप्तम्।

संस्कृत व्याख्या—…वसुमत्या—अनन्तवर्मपत्न्या, …राजानं—भास्कर-वर्माणं, …चिकीर्षितः—कर्तुमभिलषितः, …मद्भार्या—मम पत्नी, त्वद्भगिनी—तव स्वसा, …कियन्त्यहानि—कतिचिद्दिनानि, युष्मदन्तिकं—युष्माकं समीपम्, …यावदिष्टजनोपलम्भः—इष्टजनस्य प्रियजनस्य उपलम्भं लाभं यावदित्यर्थः, …अनेहसं—कालं, …तम्—इष्टजनम्, …समेष्यामि—आगमिष्यामि, …… राज्यवः—राज्यभारः, न निर्वाह्या—न वोढुं शक्या, ...प्रत्यवादि—प्रत्युक्तः, 'चिन्तालवः—चिन्तालेशः, · ·सचिवरत्नं—मन्त्रिश्रेष्ठः, · ·वचनसन्दोहैः—वाक्य-समूहैः, …सजननीकः—समातृकः, …प्रयाणोपक्रमात्—प्रस्थानारम्भात् प्रस्थानो-द्यमादित्यर्थः, …आत्मसात्कृत्वा—स्वाधीनीकृत्य, राजानं—भास्करवर्माणम्, आमन्त्र्य—निवेद्य, यावत्, त्वदन्वेषणाय—राजवाहनान्वेषणायेत्यर्थः, …आका-रितः—आहूतः, …पूर्वपुण्यपरिपाकात्—प्राक्तनपुण्यफलात्, स्वामिना—भवता, समगंसि—सम्मिलितः।

हिन्दी अनुवाद—एक दिन माता वसुमती के साथ बैठे हुए उस राजा (भास्करवर्मा) से मैंने निवेदन किया—'मैं एक कार्य को प्रारंभ करने की इच्छा कर चुका हूँ। वह जब तक सिद्ध नहीं हो जाएगा तब तक मैं कहीं भी एक जगह (स्थिर) नहीं रह सकता। इसलिए यह मेरी पत्नी आपकी बहन मंजु-वादिनी कुछ दिनों तक आप लोगों के पास ही रहे। जब तक मैं अपने इष्ट

जन को प्राप्त करने के लिए कुछ समय तक पृथ्वी पर भ्रमण करके, उसे प्राप्त करके पुनः यहाँ आ जाऊँगा'। यह सुनकर माता की राय से राजा ने कहा—'यह जो हम लोगों का इस राज्य की प्राप्ति रूप इतना बड़ा अभ्युदय हुआ है, उसका असाधारण (मुख्य) कारण आप ही हैं। आपके बिना हम से क्षण भर भी यह राज्य का भार वहन करने योग्य नहीं है। इसलिए आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?' यह सुनकर मैंने प्रत्युत्तर दिया—'आप लोग लेशमात्र भी इसकी चिन्ता चित्त में न करें। आपके घर में जो श्रेष्ठ मंत्री आर्यकेतु है, वह इस प्रकार के अनेक राज्यों का भार वहन करने में समर्थ है। इसलिए वहाँ उसको नियुक्त करके (अर्थात् उसे राज्य-भार सौंपकर) मैं जाऊँगा।' इत्यादि वचन-समूहों से प्रलोभन देने पर भी माता सहित राजा ने अनेक आग्रहों से मुझे कुछ काल के लिए यात्रा आरंभ करने से रोक दिया। उत्कलदेश (उड़ीसा) के स्वामी प्रचण्डवर्मा का राज्य मुझे दे दिया। मैं भी उस राज्य को अधीनस्थ कर राजा से निवेदन करके जब तक आपको ढूंढ़ने के लिए यात्रा आरंभ करने लगा तब तक अंग देश के अधिपति सिंहवर्मा द्वारा अपनी सहायता के लिए बुलाया जाकर मैं यहाँ आने पर पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से स्वामी (आप) से मिल गया।

टिप्पणी—व्यजिज्ञपम्—निवेदन किया। वि√ज्ञप्+णिच्+लुङ—मिप्। **चिकीर्षितः**—करना चाहा। कर्तुम् इष्टः चिकीर्षितः√कृ+सन्, द्वित्वादि,+क्त। **कियन्त्यहानि**—कुछ दिन। यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया हुई है। **युष्मदन्तिकम्**—तुम लोगों के समीप। **इष्टजनोपलम्भः**—अभीष्ट व्यक्ति की प्राप्ति। इष्टः जनः (कर्म० स०), इष्टजनस्य उपलम्भः (ष० त०)। **अनेहसम्**—समय तक। यहाँ भी उपर्युक्त सूत्र से द्वितीया हुई है। **अगादि**—कहा। =गद्+लुङ कर्मणि। **एतद्राज्योपलम्भलक्षणस्य**—इस राज्य की प्राप्ति है चिह्न जिसका ऐसे। एतत् राज्यम् एतद्राज्यम् (कर्म० स०), एतद्राज्यस्य उपलम्भः (ष० त०)। स एव लक्षणं यस्य स एतद्राज्योपलम्भलक्षणः (ब० स०), तस्य। यह 'अभ्युदयस्य' का विशेषण है। **राज्यधूः**—राज्य की धुरा या भार। **निर्वाह्या**—वहन करके योग्य। निर्=वह्+ण्यत्+टाप्। **सजननीकः**—माता समेत। जनन्या सहित: सजननीकः (ब० स०),

कप्। **प्रयाणोपक्रमात्**—यात्रा के आरंभ या तैयारी से। प्रयाणस्य उपक्रमः (ष० त०), तस्मात्। **आत्मसात्**—अपने अधीन। आत्मनः अधीनम् इति आत्मसात्+आत्मन्+साति। **आकारितः**—बुलाया हुआ। आ=कृ+णिच्+क्त। **पूर्वपुण्यपरिपाकात्**—पूर्व जन्म के पुण्य के फल से (या परिणाम स्वरूप)। पूर्वम् पुण्यम् (कर्म० स०), तस्य परिपाकः (ष० त०), तस्मात्।

Bhavan's Sri Sankaracharya Sanskrit ... Bharatiya Vidya ... 712

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya

संस्कृत साहित्य के अद्वितीय ग्रंथ

- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामजी उपाध्याय
  भाग १ (काव्य साहित्य) १७.००; भाग २ (नाटच साहित्य-पूर्वार्द्ध) १२.००
- भारत की संस्कृति साधना—डा० रामजी उपाध्याय १०.००
- प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति—डा० रामजी उपाध्याय १२.००
- भारतीय संस्कृति का उत्थान—डा० रामजी उपाध्याय ३.७५
- भारत की सामाजिक क्रान्ति—डा० रामजी उपाध्याय ३.००
- संस्कृत के महाकवि और काव्य—डा० रामजी उपाध्याय ८.००
- भारतीय संस्कृति—डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ७.५०
- संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका—डा० बाबूराम सक्सेना ६.००
- संस्कृत निबन्ध दर्शिका—Aptes Guide to Sanskrit Composition ५.००
- सिद्धान्तकौमुदी-कारकदीपिका—पं० मोहन वल्लभ पंत ४.७५
- लघुसिद्धान्तकौमुदी—संज्ञा-संधि १.००; अजन्त पुंल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग १.००
  कृदन्त कारक, समास, तद्धित २.००; पुंल्लिग सुवन्त, लकारार्थ, स्त्रीप्रत्यय ४.५०
- श्रीमद्वाल्मीकि रामायण—दस खण्ड (सटीक)—द्वारका प्रसाद शर्मा २४.००
- रघुवंशम्—सर्ग २–२.५०; सर्ग १३-२.७५ व सर्ग, ३, ४, ५, ६, ८, १४ प्रत्येक २.००
- रघुवंशम्—सर्ग १ ३.००
- नलोपाख्यानम् ४.००
- प्रतिमानाटकम्—कपिलदेव द्विवेदी ३.५०
- मेंघदूतम्— पूर्व ३.०० व उत्तर ३.००
- कुमारसंभवम्—सर्ग १ १.०० व सर्ग ५ २.००
- शिशुपालवधम्—सर्ग १ ४.०० व सर्ग २ २.००
- किरातार्जुनीयम्—सर्ग १ ३.०० व सर्ग २ २.००
- हर्षचरित—प्रथम उच्छ्वास ३.००
- काव्यप्रकाश—दशम उल्लास २.५०
- बुद्धचरितम्—सर्ग ३ ०.७५
- उत्तररामचरितम्—सर्ग ३ १.५०
- मित्रलाभ—हितोपदेश २.००
- चंद्रालोक पंचम मयूख २.५०
- कादम्बरी—कथामुख ८.५०
- दशकुमारचरित—पूर्व पीठिका १.००
- पंचतंत्रम्—अपरीक्षितकारक २.७५
- मुद्राराक्षस-नाटकम् ८.००
- वेणीसंहार-नाटकम् ७.००
- स्वप्नवासवदत्तम् ४.००
- ऊरुभंगम् २.२५
- रत्नावली-नाटिका ४.००
- मालविकाग्निमित्रम् ४.००
- विक्रमोर्वशीयम् ३.७५
- भोजप्रबन्ध २.५०
- नीतिशतक ३.००
- वैराग्यशतक २.५०
- अमरकोष ५.००
- ईशावास्योपनिषद् १.००
- कठोपनिषद् २.७५
- शुकनासोपदेश १.५०
- महाश्वेतावृत्तान्तः २.५०
- विश्रुतचरितम् २.००

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

२, कटरा रोड, इलाहाबाद-२